जागो, अपने आप में

पूज्यपाद ब्रह्मलीन संतश्री लीलाशाहजी महाराज

श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संतश्री आशाराम आश्रम
मोटेरा * साबरमती * अहमदाबाद

जागो, अपने आप में

संत श्री आशारामजी महाराज

या तो तुम अपने मन के प्रभु बनो, नहीं तो मन तुम्हारे ऊपर अपना प्रभुत्व जमा लेगा।

*

श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आशाराम आश्रम
मोटेरा ॰ साबरमती ॰ अहमदाबाद

JAGO, APANE AAP ME
Sant Sri Asharamji Maharaj

प्रकाशक :
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आशाराम आश्रम, साबरमती
(मोटेरा आश्रम)
अहमदाबाद – ५.

प्रथम आवृत्ति :
श्री गुरुपूर्णिमा महोत्सव
२० जुलाई, १९७८

मूल्य : एक रुपया

मुद्रक :
रतिलाल अंबालाल पटेल,
अक्षर प्रेस,
११, आशीष इन्ड. अेस्टेट,
नागरवेल हनुमान रोड,
रखियाल अहमदाबाद–२३.

निवेदन

जीवन को योग्य रीति से चलाना यह मनुष्य के लिये सदैव से एक समस्यामूलक विषय रहा है। एक व्यक्ति जिसे ठीक समझता है, दूसरा व्यक्ति उसे ही गलत साबित करता है। एक ही परम्परा से–एक ही वस्तु से किसी को लाभ तो किसी को हानि होती है। यह इस कारण से होता है क्योंकि लोग मनुष्य की अन्तर की गहराइयों में प्रवेश नहीं कर पाते और नीति–नियम निर्धारित कर देते हैं।

तत्वज्ञ महापुरुप अन्तश्चेतना से पूर्णतः परिचित होते हैं। चेतना एक ही है – सत्य एक ही है, इसलिए उससे अेक होकर वे जो करते हैं–जो कहते हैं, वही हो जाता है। प्रकृति की चीजें भी उनके संकल्प मात्र से प्रभावित हो जाती है। इसीलिये ऐसे संत महापुरुषों को समाज में सर्वोपरि स्थान दिया हुआ है।

संत श्री आशारामजी ऐसे ही एक संत हैं। सहज भाव से साधक एवं भक्तों के बीच उनके मुखारविन्द से जो धार्मिक गूढ रहस्य सरल शब्दों मे व्यक्त होते है वे वस्तुतः लोकोपयोगी हैं। उनकी योग एवं वेदांत की ठोस प्रवृत्तियां आने वाले जिज्ञासुओं के लिये साधना-दृष्टि से बहुत उपयोगी सिद्ध हो रही हैं।

प्रस्तुत पुस्तक अेसी ही उनकी मधुर ओजपूर्ण वाणी का संकलन है। साथ ही उनके सम्पर्क मे आने वाले भक्तों एवं साधकों को होने वाले अमूल्य अनुभव-लाभ के भी कुछ अंश सम्मिलित हैं। आशा है धर्म एवं साधना प्रेमी सज्जनों के लिये यह छोटी सी पुस्तिका लाभ प्रद सिद्ध होगी।

— श्री योग वेदान्त सेवा समिति

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
१. नश्वर से शाश्वत् की ओर	१
२. सुख की खोज बाहर नहीं, भीतर करें	१७
३. पूज्यश्री के सांनिध्य में कुछ अमृतमय क्षण	२६
वाह फकीरी	२६
जो एक बार स्वामीजी के पास आया	२८
इसलिये आज आ पहुँचा हूँ	२९
आपने मुझे चिन्तामुक्त कर दिया	३०
बोलो, है कोई तैयार	३२
श्रद्धा का फल	३५
नमनमात्र करने का सौभाग्य	३६
मुझ पर तो बापू की अखूट कृपा बरसती है	३७
उस दिन मुझे अनुभव हुआ कि	३८
४. कुण्डलिनी योग	४०
५. प्राणायाम	४९
६. ये दिव्य पुरुष और उनकी अलौकिक करुणा	५२
७. साधना पथ पर बढ़ते चलें	५८

संत श्री आशारामजी द्वारा लोगों का नैतिक और धार्मिक जीवन ऊँचा उठाने के लिये किये जा रहे सुधारकार्य बहुत महत्त्वपूर्ण और सराहनीय हैं। आशारामजी ने यहाँ इस जंगल में मंगल बना रखा है। यहाँ से संत श्री द्वारा प्रेरित सुधारकार्य समाज जीवन में अभूतपूर्व परिवर्तन लाएंगे। आप सब बडे भाग्यशाली हैं जिनको ऐसे महान संत का सांनिध्य मिला है। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि ऐसे संतश्री को ईश्वर लम्बी आयुष्य प्रदान करे– उनको दीर्घजीवी बनाएं।

श्री कैलाश पीठाधीश्वर महामंडलेश्वर
१००८ स्वामी श्री विद्यानंद गिरिजी महाराज
वेदान्त–सर्वदर्शनाचार्य, कैलाश आश्रम, ऋषिकेश

आशारामजी की एक पुस्तक को पढकर मुझे लगा कि ये कोई मस्त फकीर हैं। इनसे अवश्य मिलना चाहिये। इसलिये यहाँ चला आया। अहो! कैसा मनोहारी पवित्र वातावरण है यहाँ! यह स्थान तो बडा सुहावना है। यहाँ अधिक रुकूँ इतना समय भी नहीं है, फिर भी एकदम जाने की भी इच्छा नहीं हो रही है। आप सबके बडे पुण्य कर्म उदय हुए हैं जो आपको आशारामजी जैसे संत मिले हैं। आप स्वामीजी के संग का पूरा पूरा लाभ उठावें।

पूज्य श्री वैरागी बाबा
कृष्णधाम, वृंदावन (जि. मथुरा) यू.पी.

सच्ची बात तो संत ही कहते हैं। यो तो फकीराबाद है। हमारे संत आशारामजी ऐसे ही समर्थ संत हैं। उनसे कुछ न कुछ लो, नहीं तो समय निकल जाएगा और तुम पछताते रह जाओगे। तुम साधक हो, अकेले अकेले साधना करोगे तो भटक सकते हो, मगर अपने सांई आशारामजी को पकडे रखोगे तो साधना में सफल हो जाओगे।

संत की जयंति मनाने के इस अवसर पर कुछ न कुछ त्याग करोगे तभी संत की जयंति मनाना सार्थक होगा। आपके अन्दर कुछ दुर्गुण हो तो उनका त्याग करो। हमारे जो महान् सांई बाबा है – संत आशारामजी हैं जिनकी हमें प्राप्ति हुई है उनको हम खूब खूब मन से माने, तन मन धन से उनकी सेवा करें। आपके पास धन हो तो धन से, मन हो तो मन से, कर्मशक्ति हो तो कर्म करके उनकी सेवा करें। हम आशारामजी को इस जन्म जयंति पर खूब खूब बधाई देते हैं।

आयुर्वेदाचार्य पूज्य स्वामी श्री मंगलानन्दजी महाराज
गीता मंदिर, अहमदावाद.

आसन–प्राणायाम आदि यौगिक क्रियाएं करने से शरीर की स्थूलता घटती है और मन शांत होता है। परन्तु साधक योगमार्ग में ठीक से आगे तो तभी बढ सकता है जब उसे कोई पूर्ण योगी गुरु मिले। आप लोग बडे भाग्यशाली हैं, क्योंकि आपको संत आशारामजी जैसे शक्तिपात करने में कुशल एवं समर्थ ब्रह्मनिष्ठ गुरु मिले हैं।

श्री बलरामदास जी महाराज
लोदरा (गुजरात)

अपने लिये बड़े सौभाग्य की बात है कि हमें संत आशारामजी जैसे महान् धार्मिक आगेवान मिले हैं। आज मोटेरा आश्रम तीर्थ–धाम बन गया है। हमारे समाज में कई कुरीतियाँ और कुप्रवृत्तियाँ बढ रही हैं। उनको ठीक करने में आश्रम की सद्प्रवृत्तियाँ बहुत बड़ा महत्वपूर्ण भाग अदा कर रही हैं।

श्री थावरदास खूबचन्दानी
सदस्य, गुजरात राज्य विधान सभा

जिस इंसान के जीवन में धर्म का लिहाज नहीं है, वह इन्सान इन्सान नहीं है, इन्सान के लिबास में हैवान है। इन्सान जब पृथ्वी पर आता है तो उसको सही रास्ता दिखाने के लिये संत भी इस भूमि पर आते हैं और उसको सही रास्ता दिखाते हैं। संत तो सच्ची शिक्षा देते हैं, मगर हम उनको अपने अन्दर उतारते हैं कि नहीं यह महत्वपूर्ण बात है। संत आशारामजी की जो पवित्रवाणी है, धार्मिक वाणी है, सदाचारवाली वाणी है वह आध्यात्मिक शांति देने वाली वाणी है। उस पर हमें अमल करना चाहिये। परन्तु कई ऐसे विघ्न-संतोषी आदमी भी हैं जो धर्म पर–सदाचार पर नहीं चलते। वे सोचते हैं कि कैसे भी करके समाज में विघ्न पड़े। मैं कई दिन से ऐसी बातें सुन रहा हूं। मेरी भाई बहनों से विनती है कि किसी संत के खिलाफ, किसी धार्मिक प्रचार के खिलाफ यदि कोई व्यक्ति गंदा प्रचार करता है फिर भले वह आपका मित्र हो, आपका पड़ोसी हो, आपका कुटुम्बी हो कोई भी हो ऐसे विघ्न संतोषी के कुप्रचार को, अफवाहों को तुरंत बंद करवा देना अपना फर्ज है (जोर से तालियों का गगन भेदी गुंजन)।

सांई आशारामजी से मेरा बहुत समय से परिचय है। पहले हम दोस्त थे, अभी मैं उनका शिष्य हूँ (फिर से तालियाँ)। खास उम्मीद है कि संतों ने समाज के लिये जो जन्म लिया है उसका फायदा और फल हम पूरा पूरा लें। इसके सिवाय अपना कोई चारा नहीं है। मैं तो धर्म का इतना ज्ञाता नहीं हूँ, लेकिन मेरा धर्म में अथाह विश्वास है। ...

श्री लेखराज बचानी
संसदीय सचिव (गुजरात)

यहाँ जब भी आता हूँ तो स्वामीजी बोलने के लिये कहते हैं। परन्तु यहाँ मैं बोलने नहीं, सुनने के लिये ही आता हूँ। मुझे स्वामीजी के दर्शन एवं वचनामृत से जिस आत्मिक शांति का अनुभव यहाँ होता है वैसा कहीं नहीं होता। साथ ही स्वामीजी से यह प्रार्थना भी करता हूँ कि हृदय में मोक्ष मार्ग के पथिकों की लिस्ट में मेरा भी नाम जोड ले। (भावपूर्ण शब्दों में) और क्या बोलूं…।

मोतीभाई चौधरी, संसद सदस्य

मैं एक साधक मित्र मि. जॉनी के आग्रह से वाडज में होने वाले स्वामीजी के ३ दिन के सत्संग प्रोग्राम में केवल एक दिन १० मिनट के लिये अतिथि विशेष के नाते आया था। परन्तु संत श्री आशारामजी बापू के वेदान्त प्रवचन में मैंने स्वामी विवेकानन्दजी की सिंह गर्जना सुनी और उनके मोहक आत्मीय आकर्षण का कुछ ऐसा विशेष प्रभाव मेरे हृदय में हुआ कि मैं उस दिन तो पूरे सत्संग कार्यक्रम में रहा ही, शेष दो दिन भी आता रहा और मंत्रमुग्ध की नाईं सुनता रहा।

स्वामीजी में विवेकानन्दजी का आध्यात्मिक ओज है। सम्पूर्ण सभा को अपनी ही ओर आकर्षित बनाए रखने का प्रभाव शाली व्यक्तित्व उनमें छिपा हुआ है। मुझे लगता है स्वामी विवेकानन्दजी का छोड़ा हुआ अधूरा कार्य पूरा करने के लिये ही जैसे इन संत विभूति का अवतरण इस भूमि पर हुआ है।

श्री मणीशंकर भाई पंड्या
मैनेजिंग डाइरेक्टर : विवेकानन्द कालेज और विवेकानन्द हॉस्पीटल
महामंत्री, गुजरात ब्रह्मसमाज, एवं सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री

*

नश्वर से शाश्वत् की ओर —

उत्तरायण ध्यानयोग शिविर
१४–१५–१६ जनवरी, १९७८

"जोर से श्वास खींचो………और जोर से"

स्वामीजी की घन-गंभीर आवाज शांत वातावरण में गूंज उठी। विशाल ध्यानकक्ष सुगंधित धूप के धुएं से आच्छादित है। सभी साधक स्वामीजी के संकेत के अनुसार प्राणायाम कर रहे हैं।

स्वामीजी 'ओ ऽऽऽ म' की लम्बी ध्वनि करते हैं। सभी साधक अनुसरण करते हैं। कुछ और क्रियाएं होने के बाद स्वामीजी की आवाज गूंजती है :

'शांत हो जाओ, शां ऽ ऽ त हो जाओ ऽ ऽ ……।'

धीरे धीरे सम्पूर्ण भवन में शांति छा जाती है। एकाएक एक साधक जोर से चिल्ला उठता है—'हटा दो यह

सब, ठोकर मार दो...।' दूसरे कोने में बैठा साधक जोर से हंस पड़ता है। मगर उसकी आँखें बन्द हैं।

थोड़ी देर पूर्व अपूर्व शांति थी भवन में और अब अपूर्व शोर होने लग गया है। कोई कोई तो आसन करने लगा है। एक साधक अपनी जगह से उठकर धीरे धीरे चलने लगा है। उसकी आँखें बन्द हैं। थोडी ही दूर जाकर दूसरे साधक से टकराकर गिर पडता है और पडा रहता है वहीं। उसे होश नहीं है कि मै कहां हूं और क्या कर रहा हूं और मुझे क्या करना चाहिये। शायद किसी और ही लोक में पहुंच गया है।

स्वामीजी– यह पागलों की दुनियाँ है ऽऽऽ।

कुछ साधक जोर जोर से अट्टहास करने लग पडे हैं। स्वामीजी– यहाँ चालाक लोगों का काम नहीं है।

प्रभु के प्रति समर्पित हो जाओ। अपने अहं को सुरक्षित रखने से ही ध्यान में बाधा खडी होती है। अपने अहं को विसर्जित करो। प्रार्थना करो······ मन ही मन :

हे प्रभु!

हे दीनबन्धु!

हे सर्वरक्षक!

हे आनंद के भंडार!

मेरी चतुराई ले लो। हे प्रभु! तेरे में मिटना आ जाय। प्रभु तू मुझे अपना ले। मैं जितनी चतुराई करता हूं उतना ही तेरे से दूर हो जाता हूं। अब तू ही मुझे सम्हाल प्रभु······। संसार की बातों के लिये तो यह हृदय पिघल

जाता है, परंतु तुझसे मिलने के लिये नहीं पिघलता कम्बख्त! स्वामी रामतीर्थ रात रात भर रोते थे तेरे विरह में और मेरा यह पापी हृदय······ यह तेरे लिये नहीं छटपटाता– दो बूंद आँसू भी नहीं बहाता·········!

प्रार्थना करो और गलादो अपने अहं को। मत सोचो कि लोग क्या कहेंगे यदि लोगों के कहने में रहे·······, यदि बाहरी लोगों की गुलामी में रहे तो अपने अंदर के शहंशाह (आत्मानंद) को नही मिल पाओगे। ····· चूक जाओगे······इस बार भी। बहुत बार चूके हो·······। दूसरों की आँखो से अपने आपको आँकने वाला यह निकम्मा मन हमको बहुत बार भुलावे दे चुका है।······ मत खाना इस बार धोखा······। जिनको विषयानंद चाहिये उनको खाने दो धोखा। ··· आप सरल बन जाओ ऽऽऽ।

सम्पूर्ण भाव से प्रार्थना करो– प्रभु! हमें अपने में डुबा दो। हम तुममे डूब जाएं– तुममे तुम हो जाएं······।

(कुछ साधक सिसकियाँ भर रहे हैं)

यहाँ मिटने वाले ही पहुंच सकते हैं, बनने वाले नहीं। बनना है तो संसार भट्ठी में जाओ।··· मगर याद रखना! जो भी बनोगे एक दिन वह मिट जाएगा।

भूल जाओ अपने आपको! ध्यान करने की भी कोशिश मत करो।··· ··छोड दो अपने आपको प्रभु के हाथों में।

मिट जाओ ऽऽऽ!

बाहर आवाज मत करो····।

भीतर ही भीतर अपने आत्मा के आनंद में खो जाओ...।

(एक साधक आंखें खोलकर इधर उधर देखने लगता है)

कोई आँखे नही खोले। जो बाहर के चक्षु खोलता है उसके भीतर के चक्षु बन्द ही रह जाते हैं। जो बाहर का सुख चाहता है वह भीतर के आनन्द से वंचित ही रह जाता है।

(थोडी देर शांति रहती है)

स्वामीजी- भीतर ही भीतर मिटने की भावना करो। अपने आपको भावना करके मरा हुआ देख लो। भावना करो कि घरमे बैठे-बैठे मेरे हृदय में एकाएक दर्द होने लगा। लोगों के संभालने से पहले ही हार्ट फेल हो गया और मेरा निर्जीव शरीर भूमि पर गिर पडा। परिवार के लोग मेरे शव के चारो ओर एकत्रित हो गये हैं और रो रहे हैं। कोई कहता है, आदमी तो अच्छा था......। कोई कुछ कहता है- कोई कुछ। मगर मैं तो कुछ था ही नहीं। यह तो मेरे शरीर के सब साथी थे। मैं यह सब खेल अलग खडा देख रहा हूं।

ओह! मैं भी कैसा बेवकूफ था कि सारे शरीर के सम्बंधों को अपने में मानकर सुखी-दुखी हो रहा था!

लोग कह रहे हैं,... अब जल्दी करो। उठाओ इसकी ठाठरी को, नहीं तो गंध मारेगा। जल्दी-जल्दी लोग शव बांधकर ले चले श्मशान की ओर......।

लकडियाँ सजा दी गई है। अब इस देह को लकडियों में रख दिया हैं। लोग कहते हैं, लगा दो आग...... जल्दी करो।

ब...... स! लगा दो आग! यही संबंध था दुनियाँ से!

अरे, जिन लोगोंके लिये जिन्दगीभर मैंने एडी से चोटी तक का पसीना बहाया, जिनके लिये दुख भोगा ऽऽऽ- रात रात भर जिनके रोग और शोक मे जागा... अब उनमें से कोई भी साथ नहीं चलने को तैयार......!

ओह...! हजारों रुपयों का वह बंगला खून पसीना सींच कर जिसे बनाया था..., वह कार... वह भी यहीं रह गई... वे मित्र जो कहते थे, तुम्हारे लिये जान तक देने को तैयार हैं... वे... और वह पत्नी जो कहती थी... जब तक चाँद और सितारे चमकते रहेंगे......

...कोई भी काम नहीं आया ऽऽऽ!

स्वामीजी का स्वर बडा विषादपूर्ण है। कई साधक जोर जोर से रोने लग पडे है। कई सिसकियाँ भर रहे हैं। स्पष्ट है कि अभी वे बाहरी दुनिया से दूर हैं।

स्वामीजी- कोई भी काम नहीं आया ऽऽऽ। ठीक ही कहा था किसी ने -

पडा रहेगा माल खजाना,
छोड त्रिया सुत जाना है।
कर सत्संग अभी के प्यारे,
नहीं तो फिर पछताना है॥

यदि सत्संग किया होता ऽऽऽ, यदि संसारी रस की ओर न दौडकर राम रस पिया होता ऽऽऽ...

तभी एक साधक जोर से चिल्ला उठता है —

पीना है तुझे तो खुलेआम पी।
पीना है तुझे तो सबको पिला के पी।
पीना है तुझे तो सबकुछ लुटा के पी।

वाह! लेखक सोच रहा है, यह कैसी शराब संत पिलाते हैं कि जिससे यह मस्ती साधक को आ जाती है। यदि कोई ध्यान के बारे में अनभिज्ञ व्यक्ति यहाँ आकर यह दृश्य देखें तो कुछ भी समझ नहीं पाये। वह सोचेगा, यह कोई पागलखाना है। ओर इसमें कोई जादूगर अपने जादू के बल से सबको पागल बनाये हुए हैं।

बात तो काफी हद तक सही है। मगर यह वही रस है जिसको चखकर यहाँ कइयों ने बाहर की शराब छोड दी है। बाहर के कुसंग, जुआ, छविगृह आदि जिसके पान से छूट गये हैं और आज नेक इन्सान बनकर समाज में घूम रहे हैं। मगर यहीं तक इस रस की इति श्री नहीं है। इसके केवल स्वादमात्र का यह तो परिणाम है। जिसने इसको ठीक से पीया वे तो सम्राट बन गये अखिल ब्रह्माण्ड के। वे तो परे हो गये त्रिगुणमयी माया से। वे तो वही हो गये जो वस्तुतः थे।

ओर हम तो बनने में ही सुख मान रहे हैं। कोई डाक्टर, कोई वकील कोई विद्यार्थी कोई हिन्दू, कोई इसाई, कोई ब्राह्मण और कोई जेनी बने हुए हैं। वस्तुतः हम क्या है इसकी हमें खबर ही नहीं। जरा सी हमारी प्रशंसा हो जाय तो हम गुब्बारे की भांति फूल उठते हैं। हमारे फूलने और सिकुडने की चाबियाँ तो हमने लोगों के हाथों में दे रखी हैं। जब लोग चाहें तब

हमारे तेवर बदलें। जब लोग चाहें तब हम खिल उठे। यह तो गुलामी है – पराधीनता है। क्या इसी को सुख कहते हैं? ... बहुत गंभीर प्रश्न है यह। सुख तो उस स्थिति में है कि जब हमें कोई गाली दे या हमारी प्रशंसा करे तो हमारा हृदय विचलित न हो। स्वामीजी कई बार कहते हैं — 'चाहे सारा संसार उलटा होकर टंग जाए तब भी जिसके हृदय में चिंता की एक रेखा भी न पड़े और वह अपनी आत्ममस्ती में ही पडा रहे-वह है महापुरुष! जीना तो उसीका सफल है, उसके आगे तो देवता भी सेवा करने में स्पर्धा करते हैं।'

इस समय सभी साधक अपना देह भाव (जीवभाव) भूले हुए हैं। उन्हें शायद पता ही नहीं कि हम क्या कर रहे हैं और सभ्य समाज यदि हमारी यह स्थिति देखे तो क्या कहेगा! लेकिन उस अन्दर की जिस स्थिति में वे विचरण कर रहे हैं वह तो अच्छे अच्छे धनपति और बुद्धिपतियों को भी दुर्लभ है। यह वही मस्ती है जिस मस्ती में आकर एक फकीर ने सिकन्दर एवं सिकन्दर के सारे वैभव को ठुकरा दिया था। जिस मस्ती के लिये किसी समय चक्रवर्ती सम्राट जंगलों में सिर में खाक डालकर किसी महापुरुष की खोज में मारे मारे फिरा करते थे।

स्वामीजी कहे जा रहे हैं —

मैं और मेरे को रखकर तू क्या खाक पिलाएगा!
यह तो मुर्दों की महफिल है, यहाँ जिन्दों का काम नहीं।
यहाँ तो मिटने वाले ही पी सकते और पिला सकते हैं।

हृदय में तो संसारी वासनाएं, राग और द्वेष भरे पडे हैं। और चाहता है ईश्वर भी ऐसे हृदय में ही आकर आनन्द की वर्षा कर दें। यह कैसे हो सकता है !... दूध भी लेने के लिये पात्र को धोकर साफ किया जाता है। फिर यह तो ईश्वरी मस्ती है! ईश्वरी मस्ती भी चाहिये और लोग क्या कहेंगे इसकी चिंता भी करता रहे ... बस, फिर हो गया। नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता।

यहाँ कायरों का काम नहीं है। यहाँ तो जिन्दा दिल चाहिये .. मर मिटने को तैयार! अपने हाथ से अपनी ही कब्र खोदने को तैयार हो सके जो!

मन ही मन भावना करो कि मेरी चिता जल रही है। आकाश मे अग्नि की लपटें उठ रही हैं और जिस देह को मैंने हमेशा भूल से 'मैं' 'मैं' कहा था और इत्र फुलेलों से सजाया था और जिसके मान और अपमान में मैं सुखी दुखी हुआ था वह पंचभौतिक देह अब पंच-भूतों में विलीन हो रहा है। और मैं यह सब दृष्टा होकर दूर खडा देख रहा हूं।

अब मनही मन अपने आपको कहो—

अरे, मैं हूं तो देवों का देव और अपने आपको अब तक दीन हीन मान रहा था!

मैं हूं, तो अमृतपुंज और अपने को मरणधर्मा मान कर मृत्यु से डरता था!

मैं हूं तो अखंड और अपने को खंडित मान रहा था, अपने को केवल इसी शरीर में सीमित मान रहा था!

मैं हूं तो आनन्दस्वरूप और व्यर्थ में दुखी हो रहा था!

मैं हूँ तो असीम और इस जड शरीर के साथ एक होकर अपने को तुच्छ बना रहा था!

मैं हूँ तो जन्म मरण से परे और अपने को शरीर मान-कर मृत्यु से डरता था! जब जन्मा ही नहीं तो मरूंगा कैसे? मुझे कौन मार सकता है? जीना-मरना, रोग शोक सब देह के साथ लगे हैं। मैं तो सत्-चित्-आनन्दस्वरूप हूँ।

ओह! अब तक माया ने मुझे भ्रम में रखा था। माया यानि धोखा ऽऽऽ। अब मैं धोखे में नहीं आने वाला।... ॐ आनन्द! ॐ आनन्द!! ॐ आनन्द!!!

(कुछ साधक भी ध्यानावस्था में ॐ आनन्द की मधुर ध्वनि कर रहे हैं। कोई कोई सिसकियां भर के रो रहे हैं।)

धीरे धीरे आँखें खोल दो ऽऽऽ। संसार भट्टी में वापस आ जाओ ऽऽऽ।

(साधक आँखें खोलने लगते हैं। कुछ तो आश्चर्यचकित होकर अपनी जगह बदल जाने के कारण इधर उधर देखने लगते हैं। कुछ अपने वस्त्र एवं आसन ठीक कर रहे हैं। २-३ साधक सम्मुख आकर स्वामीजी के श्री चरणों से लिपट पडते हैं। एक तो फूट फूटकर रो रहा है।

जिस आनन्द की, जिस इन्द्रियातीत आनन्द की अनुभूति इन कुछ क्षणों में उसे हुई है उसी का अहोभाव कुछ अश्रुबिन्दुओं द्वारा वह प्रकट कर रहा है। और तो ऐसा कौनसा पदार्थ इस नश्वर संसार में है जिसके द्वारा वह उसका बदला चुका सके! वह तो स्वामीजी के श्री

चरणों को छोडना ही नहीं चाहता।

स्वामीजी के नेत्र बन्द हो जाते हैं। होठों से ॐ ॐ की पवित्र ध्वनि उच्चारित हो रही है। स्वामीजी उसके सिर पर बडे प्रेम से हाथ फेरते हैं और ॐ ॐ कहकर उसे शांत होकर बैठने के लिये कहते हैं।

भवन में मौन छा गया है। सभी जागृत एवं स्वस्थ होकर स्वामीजी की ओर टकटकी लगाए बैठे हैं।)
स्वामीजी –

अभी ध्यान में हमने जिस इन्द्रियातीत अमृत रस का पान किया है वह अच्छे अच्छे राजा महाराजाओं को भी दुर्लभ रहा है। हमको भी याद है कि इसके लिये हमारे पूज्य गुरुदेव की कितनी कसौटियों में से हमें पार होना पड़ा था। यह ईश्वरीय आनन्द कोई जीव के पुरुषार्थ का फल नहीं है। यह तो ईश्वर की अहैतुकी कृपा का फल होता है। हमें चाहिये कि हम उसकी कृपा के पात्र अपने को बनाएँ।

महाराज शुकदेवजी को कितना वैराग्य था। संसार का कोई भोग उनको आकर्षित नहीं कर सकता था। फिर भी दिगम्बर अवस्था में महाराज जनक के द्वार पर उनको जाना पडा था। वहाँ भी उनकी परीक्षाएँ हुई।

प्रथम द्वार पर ही उनको सात दिन तो पड़े रहना पडा। फिर सात दिन अन्दर के दूसरे द्वार पर रोक दिया गया, फिर सात दिन भीतर तीसरे द्वार पर प्रतीक्षा करनी पड़ी और उसके बाद जनक ने उनको भीतर बुलाया। वहाँ

एक दो परीक्षाएँ और लेने के बाद उनका यथोचित आदर हुआ, सत्कार हुआ और अंत में शंकासमाधान हुआ!

कितना वैराग्य! कितनी तितिक्षा सहन करने की तैयारी! और तब जाकर उस भीतरी आनन्द का पट खुलता है। तुलना करो जरा अपने पुरुषार्थ की और उस मिलने वाली ईश्वरी कृपा की।

इधर कई साधक और साधु आते हैं। कहते हैं हमने इतने वर्ष तक जप-तप किया, इतने तीर्थों में घूमें, इतने साधुओं का संग किया, मगर कुण्डलिनी जागृत नहीं हुई ……। कितनी मुश्किल है यह योग साधना! तन रोगी मन मलिन और इतनी छोटी उम्र। इस युग में यदि पहले की तरह योग साधना करे व्यक्ति तो कितना लम्बा रास्ता है! और कहाँ ऐसे साधन और परिस्थितियां आज उपलब्ध होते हैं!

बहुत मुश्किल है।

फिर भी जो अटकल जानते हैं ऐसे काबिल महापुरुष की शरण मिल जाय साधक को तो यही पहाड़ सा दिखने वाला जन्म-जन्मों व वर्षों का रास्ता महीनों में कट सकता है।

यदि हम अपने अहं को विसर्जित करने को तत्पर हो सकें और ऐसे महापुरुष की आज्ञानुसार चल सकें तो सारी मुश्किलें आसान बन सकती हैं। यह मिटने का मार्ग है। साधक स्वयं नहीं मिट पाता मगर यदि गुरु के प्रति समर्पण भाव उसमें आ गया तो बाकी वे सब करा लेते

हैं। वे ये सब युक्तियाँ जानते हैं। अभी कुछ साधक हैं ऐसे जिनके बारे में कभी कभी थोड़ा कठोर होने की सोचता हूँ ताकि उनकी साधना आगे बढ़े, परंतु फिर यह विचार आता है कि शायद वे सहन नहीं कर पाएंगे और हो सकता है वे कहीं यहाँ आना ही न छोड़ दें। इसलिये पुनः पैर पीछे हटा लेता हूँ।

(यह कहकर स्वामीजी हँस पड़ते हैं। वे साधक एवं कुछ अन्य साधक भी यह समझ जाते हैं कि यह किनके बारे में कहा गया है। भवन में एक हँसी की लहर दौड पडती है।)

शिष्य यदि मनमुख रहा और मन के कहने में ही चलता रहा तो वह कभी आगे नहीं बढ सकता। उसको गुरुमुख होना ही पडेगा। हाँ, गुरु भी ऐसा वैसा नहीं होना चाहिये। गुरु भी समर्थ होना चाहिये जो उसको साधना में श्रेष्ठ से श्रेष्ठ मार्ग से आगे बढा सके। शिष्य की प्रकृति यदि ज्ञानमार्ग की है और गुरु उसको कुण्डलिनी योग ही कराता रहे, या शिष्य की प्रकृति कुण्डलिनी योग की है और गुरु उसको ज्ञान योग में ही घसीटता रहे तो इसमें शिष्य का उत्थान नहीं हो पाएगा। इसीलिये कहा है कि गुरु श्रोत्रिय हो और ब्रह्मनिष्ठ हो। साथ ही यदि योगी हुआ तो और भी उत्तम। ऐसा गुरु हो और साधक भी योग्य हो तो काम तुरंत बन जाता है।

यह मिटने वालों का रास्ता है। यह प्रभु के लिये पागल हो जाने वालों का रास्ता है। जो मिटने को तैयार है, जो प्रभु प्रेम में पागल होने से घबराता नहीं है और

लोगों के कहने की परवाह नहीं करता वही इस रास्ते पर चल सकता है। बाकी तो रास्ते में ही रुक जाते हैं। अभी ध्यान के समय हमने मिटने का ही अभ्यास किया था।

और यह तथ्य है कि बिना अपने अहं को मिटाए आत्मानन्द का रसपान कर नहीं सकते।

संसार के बाकी सारे रस बनने पर मिल सकते होंगे, मगर यह रस तो मिटने से ही मिलता है।

आग दुनियाँ को लगा दे
तो उजाला हो जाएगा।

संसार के रिश्ते और सम्बंध सदैव नहीं रहने वाले हैं। यह सब शरीर के ही सम्बंध हैं। किंतु हम क्या शरीर हैं!

हम शरीर नहीं तो और क्या हैं? मन है या बुद्धि है। न हम शरीर है न मन है न बुद्धि है तो फिर हम कौन है, क्या है - यह सब तो साधक की साधना के मौलिक प्रश्न हैं। इनको यदि हल करना है और अपने आप को जानकर सुख-दुख से परे आत्मिक आनन्द के अधिकारी बनना है तो इन सांसारिक सम्बंधों में अधिक नहीं उलझना है। जितना आवश्यक है उतना व्यवहार करते हुए अपनी साधना को निर्विघ्न अपनी अपनी जगह पर आगे बढ़ाते जाना है।

जब साधक दृढ़ निश्चय के साथ चल पड़ता है अपने साधना पथ पर तो विघ्न भी अपने स्थान से चल पड़ते हैं

उसे भुलावा देने के लिये; ··· उसे पथ से डिगाने के लिये। यहीं साधक को सचेत रहने की आवश्यकता है। ऐसे लोगों से बचो, ऐसे वातावरण से बचो, ऐसे आकर्षणों से बचो इस समय ··· क्योंकि अभी साधना का बीज अंकुर ही बना है अभी छोटा पौधा ही बन पाया है। अभी पेड़ नहीं बना है। गुरु के प्रति शिष्य का श्रद्धा का धागा बडा महीन और नाजुक होता है। उसे सम्हालो, कहीं वह टूट न जाय।

श्रद्धा सदैव एक जैसी नहीं रहती। वह कटती पिटती टूटती खपती रहती है। उसे सम्हालो, वह बहुत मूलयवान है। वही तुम्हें नर से नारायण बनाने वाली है। उसी के सहारे तुममें परमात्मा का आनन्द खिलने वाला है। जरा से चूके कि··· फिसलते चले जाओगे।··· क्योंकि फिसलाने वाले बहुत हैं। पानी ढाल में बहना जानता है। ऊपर चढने में बल की जरुरत होती है। साधक को ऊपर चढना है। नीचे तो सभी चल ही रहे हैं।

इसलिये साधक को बहुत सम्हल सम्हल कर चलना होगा। जैसे गर्भिणी स्त्री सम्हल सम्हल कर चलती है। उसके उदर से तो नश्वर शरीर का जन्म होगा··· मगर साधक तो अपने हृदय में परमात्मा को जन्म देने जा रहा है ऽऽऽ।

कई बार साधक की कसौटियाँ होगी। उसे गुरु ठोक-बजाकर तपा-तपा कर आगे बढाएंगे। प्रभु से मिलन यह कोई छोटी मोटी बात नहीं है। यह वह बात है जिसके आगे कोई बात नहीं है। यह यह प्राप्ति है जिसके आगे

कोई प्राप्ति नहीं है। यह वह करना है जिसके आगे कोई करना – कोई कर्त्तव्य शेष ही नहीं बचता। यह वह पद है जिसके आगे कोई पद नहीं।

साधक को मिट्टी बनना पडेगा। कुम्हार जैसे मिट्टी को रौंद कर, कूट पीट कर, थपेड़े मारकर घड़ा बनाता है – उसे आग में तपाकर पक्का करता है, वैसे ही गुरु साधक के साथ करेगा। यदि वह मिट्टी नहीं बना – यदि उसने प्रतिकार किया – यदि वह उसकी चोटों से घबरा गया – यदि उसने हिम्मत हार दी ···· तो ! तो फिर वही संसार का नश्वर जीवन – वही आवागमन का चक्कर· वही सदियों पुराना सुख दुख का रोग – जिसको छोड़कर वह अमर पद की ओर बढ रहा था – उसे अपना लेने के लिये – उसे ग्रस लेने के लिये तैयार खड़ा है।

दोनों विकल्प हैं। या तो साधना मार्ग पर डटकर चलते रहें और अपने आनन्द मय आत्मपद को प्राप्त कर लें अथवा उसी नश्वर सुख की भ्रांति वाला और दुःखों से आपूर्ण वैषयिक संसार में फिर से फंस जाय। चुनाव तुम्हारा है।

संसार का मजा भी बिना सजा के नहीं मिलता। जड़ चीजों का सुख भी परिश्रम मांगता है। जो भी मजा चाहते हो उसकी सजा या तो पहले भुगत लो या बाद में। साधक को कठिनाईयाँ पहले भुगतनी पड़ती है, परन्तु वे कठिनाइयाँ उसे महा आनन्द की ओर ले जाती हैं।

आज तक हमने संसार में जो भी मजा लिया या सुख लिया वह तो हर्ष था सुख नहीं। हर्ष तो मन का

विकार है। वह तो आता है और चला जाता है। परम सुख नहीं है वह। परम सुख आता जाता नहीं। वह शाश्वत् सुख है।

साधक का लक्ष्य होता है परम सुख। इस शिबिर में समझो हमारा नया जन्म हुआ है। हमने विवेकपूर्वक अपना नया पथ पकड़ा है, जो हमें नश्वर से शाश्वत की ओर ले जाएगा। जो हमे देश काल और वस्तु से परे महा आनन्द को ओर ले जाएगा। यही सच्चा पथ है। बाकी सारे पथ माया में ले जाते हैं। यह पथ माया से परे ले जाता है जहाँ सुख-दुःख, रोग शोक आदि की पहुँच नहीं है। इसी पथ पर हमें दृढतापूर्वक चलना है-चलते ही रहना है बिना रुके जब तक कि लक्ष्य की सिद्धि न हो जाय।

चरैवेति चरैवेति !

ॐ… ॐ… ॐ…

सुख की खोज बाहर नहीं भीतरकरें

८-१२-७६, बुधवार
गोधरा (गुजरात)
स्वामी लीलाशाह आश्रम

सुबह के साढे छ बजे है। कई भक्त सुबह ही सुबह स्वामीजी के दर्शन हेतु पधारे हुए हैं। सभी के चेहरें पर काफी उत्सुकता झलक रही है कि कब स्वामीजी कुटिया से बाहर पधारेंगे और दर्शन देंगे। आश्रम में इधर-उधर वेदान्त के उत्साहवर्धक वाक्य लिखी हुई लोह-तख्तियाँ टंगी हुइ हैं। वातावरण में थोडीठंड है, अतः लोग कुछ सिकुड़े-सिकुड़े चादर ओढे हुए बैठे हैं। इतने में स्वामीजी अपनी कुटिया से बाहर पधारते हैं। सभी भक्त उत्साह में खडे होकर 'सद्गुरु देव की जय बोलते हैं और स्वामीजी के आसन पर बिराजने पर सभी अपने अपने स्थान पर बैठ जाते हैं।

स्वामीजी के श्रीमुख पर प्रसन्नता बिराजमान है। पूज्य श्री की प्रसन्न दृष्टि अेक बार सबके चेहरों पर घूम जाती है और सभी में उस दृष्टिमात्र से उत्साह एवं प्रसन्नता की लहर दौड़ जाती है। स्वाभाविक भी है, क्यों कि इसबार स्वामीजी कई महीनों पश्चात गोधरा पधारे है। स्वामीजी –

परमात्मा को अपने से भिन्न कभी मत देखो। वह तो सर्वव्यापक-सर्वशक्तिमान है। भिन्न मानना उसका अपमान है। जिसका अपमान करेंगे वह अपने ऊपर खुश कैसे होगा-प्रसन्न कैसे होगा ?

सो साहब सद्-सदा हजूरे,
अंधा जानत ता को दूरे।

हम परमात्मा को मंदिरों में और मस्जिदों में ढूंढते हैं, तीर्थों में ढूंढते हैं, व्रत, उपवास और गंगा स्नान में ढूंढते है, झाँझ और मजीरे बजाकर उसे पाना चाहते हैं। हम उसे अपने से बाहर सर्वत्र ढूँढना चाहते हैं-ढूँढते हैं, मगर अपने भीतर नहीं देखते; और वह है कि हमारे इतना नजदीक बैठा है-हममें ही बैठा है कि उसी कारण हम उसको देख नहीं पाते।

'तजाहुल से मेरे नामोनिशां के पूछने वाले,
वहीं रहता हूँ मैं अब तक जहाँ ढूँढा नहीं तूने।'

लेकिन अपने अन्दर उसे ढूँढने में अधिक सच्चाई की जरुरत पड़ती है। इसमें हृदय को शुद्ध करना पड़ता है, क्योंकि हृदय की शुद्धि उसके लिये अनिवार्य शर्त है।

और जब महापुरुषों के मार्ग-दर्शन में हम ऐसा करते हैं तो कई बाधाएँ खडी हो जाती हैं। अपने ही मित्र-बन्धु-सम्बंधी विरोध में खड़े हो जाते हैं और कहने लगते हैं- "शास्त्रों में लिखा है, 'मातृदेवो भव, पितृ देवो भव, आतिथि देवोभव' और तुम इनकी मानते नहीं ? ऐसे की जाती है भगवान की भक्ति ? ठीक है, कभी सत्संग सुनने चले गए, सुबह या शाम मन्दिर चले गए, धूप-दीप जला आए, कीर्तन कर आए, झांझ मजीरे बजा आए ! बस..., पर्याप्त है इतना !"

जो भी भगवान प्राप्ति के मार्ग पर आगे बढेगा, जो भी आत्म-साक्षात्कार के लिये साधना करेगा उसके मार्ग में इन विघ्नों का आना स्वाभाविक है। मंदिर-कीर्तन आदि तो ठीक है-बहुत कर लिये, अभी भी क्या यही करते रहेंगे ? इस बाल मंदिर से क्या आगे नहीं बढेंगे ? ऐसा नहीं है कि यह करना खराब है या इसका हम विरोध करते हैं। ये भी ठीक है, पर इससे आगे बढना पड़ेगा।

'हरम से कुछ आगे बढे तो देखा-
जबीं के लिये आस्तां और भी हैं,
अभी इश्क के इम्तहां और भी हैं-
सितारों के आगे जहाँ और भी है।'

इसलिये आत्म-साक्षात्कार करना है तो कुछ और आगे बढना ही पड़ेगा और उसमें आने वाली कसौटियों में अपने आपको कसना ही पड़ेगा। साधक खूब करे माता-पिता की सेवा, खूब करे अतिथियों की सेवा, मगर तभी तक जब तक ये सत्य के मार्ग में बाधास्वरूप नहीं बनते,

सहायक हों, अन्यथा ठुकराया जा सकता है। ईश्वर के मार्ग में-सत्य के मार्ग में साधक कभी इन विघ्नों की परवाह नहीं करता।

निःशंक होकर कूच कर, मत मार्ग पे तू रुक कहीं।
कर तू निरंतर यम-नियम, पीछे कभी भी हट नहीं॥
निर्भय सदा कर योग तू, निज लक्ष्य को मत तज कभी।
घबरा नहीं जो विघ्न आवें, सहन कर ले तू सभी॥

अपने पैरों पर खड़ा होने की चेष्टा करें। पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं। अपने आत्मबल का सहारा लो। आत्मज्ञानी महापुरुष का सहारा मिल जाय तो सर्वश्रेष्ठ है। वह तो बडे भाग्य से ही मिलता है। आप कहेंगे, उसका सहारा लेना भी तो पराधीनता है! नहीं भाई...., यह सहारा सहारा नहीं कहलाता। यह सहारा पराधीनता नहीं कहलाती।

ब्रह्मज्ञानी सबको ब्रह्मरूप समझते हैं। वे आपको दूसरा नहीं मानते अपना ही स्वरूप समझते हैं। तुम मन-बुद्धि में विचरते हो, वे मन-बुद्धि से ऊपर आत्म तत्व में रमते हैं। तुम धोखा खा सकते हो, वे तुम्हें धोखे से बचा सकते हैं। अतः संग ही करना हो तो ज्ञानी का करे।

मार्ग दर्शन लेना हो तो ज्ञानी महापुरुष से लें, अज्ञानी से नहीं। अज्ञानी आपको अज्ञान में ही उलझा

सकता है, उससे आगे उसकी पहुँच नहीं है। ज्ञानी महापुरुष ही हमें सही रास्ते पर चला सकते हैं।

कोई आपका अपमान करें, कोई आपकी निन्दा करें तो आप क्यों विचलित होते हैं? आप दर गुजर कर दें। अपमान या निंदा घूमफिर कर उसीके पास पहुँच जायेगी। आपको किसी ने गालियाँ लिखकर लिफाफे में भेजी, आप वह लिफाफा नहीं लेते तो गालियाँ आपको लगेगी क्या? लिफाफा घूमफिर कर पुनः प्रेषित (Redirect) होकर भेजने वाले के पास ही पहुँच जायेगा। आप किसी के भी अपमान के शब्दों का ख्याल मत करो। आप अपने आत्मस्वरूप का ध्यान करो।

मीरा का कितना अपमान हुआ था! उसको सांप भेजे गए। उसको जहर भेजा गया। सम्बंधियों ने उसको सताने में कोई कोर कसर उठा नहीं रखी थी। आखिर मीरा जब वहाँ से चली गई तो पीछे से अकाल पड़ गया। ब्राह्मण व ज्योतिषियों से अकाल निवारण का उपाय पूछा गया, तो उन्होंने कहा - "मीरा भक्त है। उसके यहाँ न रहने से अकाल पड़ा है। उसको वापस बुलाओ तो अकाल दूर हो।"

निदान राणा ने मीरा को बुलवा भेजा। मीरा बोली- "मैं इधर ही अपने कन्हैया की भक्ति में खुश हूँ। मुझे कहीं आना-जाना नहीं है।" मीरा ने आने से साफ इन्कार कर दिया तो फिर बुलावा आया। मीरा को जैसे तैसे मनाया-चलने के लिये राजी किया गया। मीरा वापस लौटी। अपमान करने वालों ने उससे माफी मांगी। आखिर उसी की शरण में वे आए। आना ही पड़ा शरण में उनको।

तो निंदा और अपमान की परवाह नहीं करें। निर्भय रहें। प्रसन्न रहें। अपने मार्ग पर आगे बढते रहें। जो डरता है उसी को दुनिया डराती है। यदि आपमें डर नहीं है, आप निर्भय हैं, तो काल भी आपका बाल बांका नहीं कर सकता। निर्भय रहना और प्रसन्न रहना ही ईश्वर की सबसे बड़ी भक्ति है।

भगवान को बाहर ढूंढने वाले – दूसरों को भगवान मानने वाले कई आये और चले गए। उनका निशान भी नहीं बचा, मगर अपने आत्मदेव को पहचानने वाले, उसी को भगवान मान कर जीने वाले, उसी पर भरोसा करके चलने वाले भगवत्स्वरुप बन गए–स्वयं भगवान बन गए। लोगों ने उनको पूजा।

मन तू ज्योति-स्वरूप
अपना मूल पिछान।
– 'गुरुवाणी'

इसलिये दीन मत बनो। निर्भय बनो। जो अपने आत्मदेव में श्रद्धा रखकर निर्भयता से व्यवहार करता है वह सफलतापूर्वक आगे बढता जाता है। उसे कोई रोक नहीं सकता। वह अपनी मंजिल तय करके ही रहता है। जो-जो भी संसार में सफल हुआ है वह समझ या बेसमझी से, जाने या अनजाने अपने आत्म तत्त्व का सहारा लेने से ही हुआ है। उसके जीवन चरित्र को देखो तो अपने स्वयं के आत्म तत्त्व का सहारा ही उसकी सफलता के पीछे

खड़ा नजर आएगा। वेदान्त अवश्य उसके जीवन में उतरा हुआ नजर आएगा। जीवन में निर्भयता आत्मा की ही विशेषता है। ज्योंही आपका मन आत्म भाव से दूर हटता है, आपमें भय प्रवेश करना शुरु कर देता है।

यदि सुख नहीं मिले, यदि आत्मानन्द नहीं मिले, तो दुःखी रहने का ठेका लिया है हमने क्या? दुःखी होने की क्या आवश्यकता है?

हम ही जानबूझकर दुःखी होते हैं। दुःखी न होना ही सुख है। दुःख के विचारों को त्याग दो। निर्बलता के विचारों को दूर फेंक दो।

यह मिलेगा तब सुख होगा, वह मिलेगा तब सुख आएगा, इतना कमा लूँगा तब सुखी होऊँगा, ऐसा होगा तो ठीक-वैसा होगा तो ठीक। अरे ..., यह मिले या न मिले, ऐसा हो या न हो, अनुकूलता हो या प्रतिकूलता मुझे दुःखी होने की क्या आवश्यकता है? मैं अपनी मौज में रहूँ। चाह किसी भी वस्तु की करके मैं क्यों दीन बनूँ? कोई चीज मिले तो ठीक-नहीं मिले तो भी ठीक, परिस्थिति अनुकूल हो तो ठीक-नहीं हो तो भी ठीक, मैं तो प्रसन्न रहूँगा। मैं किसी भी सुख के लिये क्या किसी के अधीन हूँ? मुझे भी सुख के लिये कहीं जाने की आवश्यकता है? सुख का भंडार तो मेरा अपना आप है। मैं आनन्दस्वरूप हूँ। इस संसार की परिस्थितियाँ तो सदैव बदलती रहती हैं। 'संसरति इति संसार।' संसार सदैव चलायमान है। बाह्य परिस्थितियों से मैं क्यों प्रभावित होऊँ?

या खून पसीना करके बहा,
या तान के चादर सोता जा।
यह नाव तो चलती जाएगी,
तू हँसता रह या रोता जा ॥

बाह्य विषयों की इच्छा क्यों करते हो ? उनमें कहीं सुख है क्या ? आज तक उनसे किसी को सुख मिला है क्या ? सुख का आभास भले ही हुआ हो, सुख का भ्रम भले ही हुआ हो, मगर सुख नहीं मिला। सुख मिला होता तो यह आगे की दौड़ ही समाप्त हो जाती। मगर सुख है ही नहीं।

जितनी अधिक इच्छा करोगे, उतने ही अधिक दुखी होओगे। उतने ही अधिक अशान्त होओगे। जो नहीं है, उसका चिन्तन करके दुखी होते हो ···· ? जो है उसको भी तो देखो। यदि देखने की समझ आ गई, देखने की सही दृष्टि बन गई तो उसमें ही सुख नजर आ जाएगा।

पूरे हैं वही मर्द जो हर हाल में खुश हैं।
अगर माल दिया यार ने, तो माल में खुश हैं।
बेजर जो किया, तो उसी अहवाल में खुश हैं।
हर काम में, हर दाम में, हर चाल में खुश हैं।

इसलिये दीन मत बनो, हर हाल में खुश-ऐसे मर्द बनो।

उस चाह को ठुकरा दो जो अपने को अशान्त बनाती है, जो अपने को दीन बनाती है। उसे पैरों तले कुचल दो।

और कह दो इन इच्छाओं और वासनाओं को – 'परे हटो इच्छाओं और वासनाओं ! अब तुम्हारे लिये इधर जगह नहीं है। अब कहीं और ठौर अपना सहारा ढूँढो। मैं भ्रम से तुम्हारे चक्कर में पड़कर अशान्त हो रहा था। अब मैं अपने आत्मानन्द में मस्त हूँ। मैं ही सर्वत्र हूँ। सब मुझमें है, मेरे से बाहर कुछ है ही नहीं कि जिसकी मैं इच्छा करूँ। यह जगत मेरा ही संकल्प है, मेरा ही खेल है। मैं ही सर्वत्र अठखेलियाँ कर रहा हूँ।'

ॐ··· ॐ··· ॐ···

पूज्य श्री के सांनिध्य में कुछ अमृतमय क्षण

वाह फकीरी !

आज ८ जनवरी, रविवार है। आश्रम में कुछ सेवाकार्य चल रहा है। पूज्य स्वामीजी भी सबके साथ ही कार्य में जुटे हुए हैं। शाम के ६॥ बजे और सत्संग भवन के सामने ही सभी स्वामीजी के सम्मुख ही सत्संग की लालसा से बैठ गए हैं।

एक साधक कोई ग्रंथ पढ रहा है। स्वामीजी शांत भाव से विराजमान हैं। उनके विशाल नेत्र बन्द हैं। साधक पढता जा रह है —

"... टुकडों की फिक्र न कर, जिसने पैदा किया है वह अवश्य देगा और देगा ही। यदि फिक्र ही करनी है तो इस बात की कर कि इस जन्म में संसारी पाश से कैसे छूट सकता हूँ। ..."

स्वामीजी एकाएक सरल भाव से बोल पड़े, अरे ! ठीक याद दिलाया। आज तो मैंने रोटी खाई ही नहीं। भगत (इस साधक को स्वामीजी इसी नाम से बुलाते हैं) ने खाना लाकर रखा भी था, लेकिन ...।

सभी स्वामीजी की ओर देखते ही रह गए। बात सही थी क्यों कि सभी सेवाकार्य में लगे हुए थे। बाकी सभी ने भोजन कर लिया था, मगर स्वामीजी कर ही नहीं पाए थे। और ऐसा एकबार नहीं-अनेक बार साधकों ने देखा है कि स्वामीजी का खाना पड़ा रहता है और या तो वे किन्हीं जिज्ञासु भक्तों का साधना में उत्साह बढा रहे होते हैं अथवा अपनी आत्ममस्ती में बैठे हुए होते हैं या आश्रम में टहल रहे होते हैं।

एक मस्तफकीर श्री रंग अवधूत ने मस्ती में आकर लिखा है –

'तन की रही न जिसको, जन की कहाँ से प्यारे !'

आत्म मस्ती में रहने वाले महापुरुषों को अपने तन की ही नहीं पड़ी है तो लोग उनके लिये अच्छा कहते हैं अथवा बुरा, उनकी प्रशंसा करते हैं या निन्दा-उसकी उन्हें कोई चिंता ही नहीं होती है। उधर उनका लक्ष्य ही नहीं होता।

धन्य हैं ऐसे महापुरुष और धन्य हैं ऐसे जिज्ञासु साधक जो उनका सांनिध्य लाभ लेकर अपना संसार-बंधन काटने का सौभाग्य प्राप्त करते हैं।

* * *

जो एक बार स्वामीजी के पास आया...

दो बालक आश्रम में आए हैं। स्वामीजी अपनी कुटिया में है। लेखक के पास धीरे से एक बालक आकर बैठ गया है। उसका चेहरा बडा गंभीर है। लेखक से पूछे बिना नहीं रहा गया –

"भाई, आज कैसे आए ? ……और आज तो तुम्हारे स्कूल की छुट्टी भी नहीं है ?"

बालक एकदम से कोई जबाब नहीं दे पाया। उसकी आँखें गीली हो गई और टप टप कुछ गर्म बूंदे उसके हाथ पर गिर पडी। लेखक ने चौक कर फिर पूछा –

"अरे, तुम तो रो रहे हो ! क्या बात है ? घर पर मारा है किसी ने तुमको क्या ? बताओ, चिंता मत करो…।"

बालक ने अवरुद्ध कंठ से इस बार जबाब दिया –

"क्या बताऊँ…आपको ! आप तो इधर आश्रम में ही रहते हैं, इसलिये आप मेरे दिल की व्यथा को क्या समझेंगे ! मुझसे न स्कूल में रहा जाता है न घर में। न खेल कूद में मजा आता है न सिनेमा में। …ब…स , यही तडप रहती है कि कब स्वामीजी के पास जाऊँअ र… और रखा भी क्या है संसार की रंगरेलियों में ? … यदि स्वामीजी आज्ञा … मगर वे आज्ञा नहीं देते … । कहते हैं, अभी पढाई करो और साधना ध्यान आदि भी करते रहो…। मगर मेरा तो मन ही नहीं… । बस ! स्वामीजी का सांनिध्य ही मुझे तो अच्छा लगता है ऽऽऽ।"

अब लेखक उसे क्या कहे ? यह एक ही की तो बात है नहीं ! यह तो यहाँ आने वाले अधिकांश साधकों का अनुभव है। अभी कुछ दिन पूर्व कुछ पत्रकार आश्रम में आए थे स्वामीजी से मिलने। गुजराती 'धर्म संदेश' पत्रिका में उनके लेख छपते हैं। उसमें उन्होंने लिखा था –

"जो एक बार स्वामीजी के दर्शन को आया उसे अपने हृदय का कब्जा स्वामीजी को सौंपना ही पड़ता है।…"

(दीपावली विशेषांक – १९७७)

लेखक को उनके इस वाक्य की बार बार याद दिला देते हैं ऐसे साधक।

* * *

इस लिये आज आ पहुंचा हूँ !

और उस दिन बड़े सबेरे लेखक आश्रम में खडा था कि एक व्यक्ति आया और कार्यालय के एक कोने में जमीन पर ही बैठ गया–चुपचाप। लेखक ने पूछा –

"भाई ! कैसे आए हो और कहाँ से आए हो ?"

वह बोला – यहीं आणन्द (एक शहर का नाम) के पास के गांव का रहने वाला हूँ और स्वामीजी के दर्शनार्थ आया हूँ।

लेखक – मगर आज तो स्वामीजी अपनी मौज में है। शायद कई घंटे बाद ही कुटिया से बाहर आवें।

मगर वह उत्साह के साथ ही बोला – भले न देर से आवें ! चाहे तो रात को बाहर पधारें। मैं तो इन्तजार करके बैठा ही रहूँगा। मुझे क्या !

लेखक विस्मित भाव से बोला – भला, ऐसा क्यों ···· ?

वह – "आपको क्या पता ! बात ऐसी है कि मेरे को कहीं से स्वामीजी की एक पुस्तक हाथ लगी थी। मुझे उनके फोटू में बड़ा आकर्षण हो गया। मैंने उसे अपने पूजागृह में रखा और सुबह उसका पाठ भी करता रहा। मेरी पीठ और कमर में एक विचित्र प्रकार का दर्द रहता था जो कभी किसी से और कई दवाईयाँ करने पर भी ठीक नहीं हो रहा था। बस, हुआ यह कि मेरी स्वामीजी में ऐसी कुछ आंतरिक श्रद्धा हुई और अन्दर ही अन्दर मुझे आनन्द भी रहने लगा। कुछ ही दिन में वह दर्द जाता रहा···। कल अचानक भाव उठा कि मुझे जल्दी से जल्दी इन महात्माजी के दर्शन करने जाना है। बस ! इसलिये आज आ पहुँचा हूँ।"

लेखक उसकी ओर देखता ही रह गया। पूज्य श्री की कृपा मौन ही मौन इस प्रकार के न जाने कितने भक्तों को निहाल करती रहती है।

※ ※ ※

आपने मुझे चिंतामुक्त कर दिया–

"स्वामीजी बाहर पधारे हैं और कह नहीं सकते कि कब लौटेंगे। शायद आज न भी लौटें। फिर, आप क्या करेंगे ?"

लेखक ने नवागन्तुक सज्जन को सरल भाव से कहा।

वह बोला – "नहीं, ऐसा न कहिये; स्वामीजी आज ही आने चाहिये और मुझे उनसे मार्ग दर्शन लेकर ही जाना है। अब तक हमें पता नहीं था इसलिये देर हो गई अन्यथा ··· मैं तो इतना नहीं भटकता, पहले ही आ जाता।"

और सचमुच स्वामीजी दो ही घंटे में लौट आए। बम्बई से आए उन सज्जन ने उन्हें बड़े श्रद्धा भाव से प्रणाम किया और अपनी राम कहानी सुनाई –

" ··· बापू ! ऐसे ऐसे मुझे अनुभव होता है। कभी तो ध्यान में एक सफेद कमल खिल उठता है। रीढ की हड्डी में कम्पन जैसा होने लगता है। कभी सीने में एक प्रकार का दर्द और कभी तो नींद ही नहीं आती। कई साधुओं से भी मिला हूँ। कोई कहते हैं–तुम्हें कोई रोग हो गया है, कोई कहता है – तुम्हें कोई भूत सताता है। कुछ डाक्टरों को भी बताया, मगर कुछ फायदा नहीं हुआ। अब तो ध्यान में बैठने से भी जी घबराता है कि पता नहीं क्या हो ? ···"

स्वामीजी थोडी देर मुस्कुराते रहे फिर बोले — "अब घबराओ मत और निश्चिंत हो जाओ। तुम्हें कुछ नहीं हुआ है। तुम्हारी योग मार्ग की साधना है। उसमें ऐसा होता ही है। तुम्हारी तो यह अच्छी साधना चल रही है ! जब ध्यान में बैठो तब ··· और ख्याल रहे बहुत अधिक संसारी व्यवहार और शादी झमेलों में मत समय दो। बस···।" और स्वामीजी ने उसे साधना के लिये कई आवश्यक बातें बतादी। क्या खाना, कब खाना, कितना सोना, कितना ध्यान करना आदि।

बड़ा गदगद होकर वह स्वामीजी के पुनः पैरों में गिर पडा और बोला–स्वामीजी, आपने मुझे चिंता मुक्त कर

दिया, नहीं तो मैं तो इसमें कुछ जानता नहीं था…।

और इस प्रकार के न जाने कितने निराश, अबोध व नादान साधक और भटकते हुए युवा साधुओं को स्वामीजी से योग के बारे में मार्ग दर्शन और आशीर्वाद लेकर सदैव जाते हुए लेखक देखता रहता है।

❋ ❋ ❋

बोलो, है कोई तैयार…!

सन १९७७ की दीवाली से एक दिन पहले की बात है। रात्री का समय था। मोती भाई चौधरी (संसद सदस्य) और उनके कुछ मित्र स्वामीजी के दर्शनार्थ आए हुए थे। घंटा भर बडा अच्छा सत्संग चलता रहा। अंत में स्वामीजी के शब्द थे –

"भाई, आत्म साक्षात्कार समझदार के लिये तो इतना सरल है जितना चाय का कप बनाना, बल्कि उससे भी अधिक सरलः और मूर्ख के लिये इतना कठिन है जैसे सुमेरू पर्वत लांघना। जिसको समझ है और किसी तत्वज्ञ महापुरूष के प्रति समर्पण भाव आ गया है तो उसे अधिक देर नहीं लगती मंजिल तय करने में।"

मोतीभाई बोले – "स्वामीजी यह सरल वाली बात जरा…।"

स्वामीजी–

जरा क्या सीधी सी है। लोग अपना राग-द्वेष, अपनी आसक्ति छोड़ नहीं पाते और कई प्रकार के बहाने बनाते हैं। कोई कहता है-अमुक सुधार करना है, जनता का हित करना है। मैंने यदि यह नहीं किया, वह नहीं किया तो बेचारों का यह हो जायेगा…। अरे, ये सब बातें बचकानी हैं। उन सुधारकों के अन्तर्मन में प्रतिष्ठा की लालसा बनी रहती है, भले वह अति सूक्ष्म ही क्यों न हो!

सबसे बड़ा काम है और सबसे बडी साधना है अपने अहं का समर्पण। अपने को मिटा देना। वह किसी से हो नहीं पाता। संत अपना सब कुछ लुटा देते हैं तभी तो दुनियाँ उन्हें झुकती है। और हम थोडा सा दान कर दें, और सोचते हैं बड़ा पुण्य किया। क्या किया? धन कोई अपने साथ लाये थे? है क्या अपना यहाँ? यहीं के पदार्थ कुछ इकट्ठे किये और यहीं उनमें से कुछ बांट दिये। थोड़ी लोगों की सेवा की और बन जाते हैं कर्मयोगी।

अरे, जो अपने आपको ही नहीं जानता वह दूसरों की क्या सेवा करेगा! और वह शायद दुनिया में नहीं होता तो लोग बेचारे भूखे मर जाते, ठंड से कांप-कांप कर मर जाते…कुछ नहीं, आज तक दुनिया ऐसी ही चल रही है और चलती रहेगी–बड़े बड़े सुधारक आए और चले गए।

मैं यह नहीं कहता कि सुधार कार्य कोई न करें। अवश्य करें। पाप न करें, पुण्य तो करें! मगर अपने

आपको जाने बिना किया गया कार्य कोई महत्व नहीं रखता। जब श्वास अपना साथ छोड़ जायगी तब ··· तब ख्याल आएगा कि मैं क्या करने आया था और इतना समय क्या किया। तब भी यह ख्याल आ जाय तो भी गनीमत है, अन्यथा उस समय भी समझ नहीं पैदा होती।

खैर, मेरा कहना यही है कि यह समझ हमें पैदा हो जाय कि इस नश्वर शरीर में रहते हुए हम शाश्वत को जान लें। और इसके लिये अपना अहं छोड़ना पहली आवश्यकता है। जिसको यह आ गया, जिसको समर्पण करना आ गया तो समझो उसे समझ आ गई। ऐसे समझदार के लिये तो साक्षात्कार कदमों में है।

बोलो. है इसके लिये आप में से कोई तैयार! मैं हाथ उठाकर कहता हूँ कि जैसा मैं कहता हूँ वैसा वह कर बताए, उसको साक्षात्कार अभी करादूँ – इसी क्षण। बोलो, है कोई तैयार··· ।"

वातावरण बड़ा गंभीर हो उठा। मगर स्वामीजी खिलखिला कर हँस पडे और बोले – देखो भाई, ये देवताओं की पूजा करना, घंटे घडियाल बजाना ये सब ··· अब मैं आपको क्या कहूँ··· ! यह बैलगाडी का रास्ता है। मगर जिसको समर्पण आ गया, अपने आपको मिटाने को जो तैयार हो गया उसके लिये हवाई जहाज का मार्ग है। ऐसों को गुरु ढूंढने नहीं जाना पडता। गुरु ऐसों को ही तो ढूंढते है।

यह समझ आनी चाहिये। और नहीं तो लानी पडेगी ही। इसके बिना कोई चारा नहीं। 'ना ऽन्यः पन्था विद्यते ऽयनाय।'

कुछ रुक कर मुस्कराकर स्वामीजी बोले – "आपको कुछ बुरा तो नहीं लगा? भाई जो बुरा लगा वह यहीं छोड जाना और अच्छा अच्छा अपने साथ ले जाना।"

सभी – "नहीं-नहीं स्वामीजी! कुछ खरा खरा सुनने को मिलता है तभी हम लोगों का जीव भाव, हमारा प्रमाद गलता है। नहीं तो यह हमारा दुष्ट मन तो ··· ।"

और सभी गद्गद भाव से स्वामीजी को प्रणाम करने लगे। स्वामीजी ने बड़े प्रेम भरे हृदय से सबको प्रसाद दिया और सबने विदाई ली।

पूज्य श्री के सांनिध्य में आने वाले धन्य हैं ये लोग जिनको समय समय पर मन को धोने का ऐसा अमृतमय सत्संग मिलता रहता है।

* * *

श्रद्धा का फल :

स्वामीजी के सम्मुख बोरतवाडा (मेहसाना जिला) के जीवतभाई नाम के सज्जन हाथ जोडे खड़े हैं। पास में उनके ८-९ वर्ष का बालक खड़ा है।

स्वामीजी – हाँ बोलो! क्या कहते हो?

जीवतभाई – बापू यह मेरा बच्चा है। कई महीनों से इसका दिमाग ठीक नहीं था। पागल हो गया था। अपने

ही कपडे फाड़ देता था। कई इलाज कराए, मगर सफलता नहीं मिली। एक दिन बापू मैंने आपमें श्रद्धा करके मानता मानी थी मन ही मन कि यदि यह ठीक हो गया तो इसको आश्रम में कांटे (तराजू) पर तोल कर इसके वजन के बराबर गुड़ आश्रम में बाटूंगा।

बापू अब यह बिल्कुल ठीक है। इसको तोलने की आज्ञा दिलवाने की कृपा करें।

बापू जरा गंभीरतापूर्वक बोले - नहीं।

जीवतभाई बेचारे निराश हो गए। दूसरे श्रोता भी चकित दृष्टि से देखते रहे। उनकी सहानुभूति जीवतभाई के प्रति हो गई थी। तभी अचानक स्वामीजी मुस्कराकर विनोदपूर्वक बोले -

"अच्छा भाई, इसको तोलना-मगर अभी नहीं! अभी यह जरा छोटा है न! तो गुड़ कम तुलेगा। जब बडा हो जाय तब तोलना ताकि आश्रम को अधिक लाभ हो।..."

और स्वामीजी के साथ ही सभी खिलखिलाकर हंस पड़े। स्वामीजी की ऐसी सरल विनोद-प्रियता के कारण गंभीर वातावरण में मुरझाए हुए दिल भी खिल उठते हैं।

*　　*　　*

नमन मात्र करने का सौभाग्य -

आश्रम में कुछ उच्च पद के लोग भी स्वामीजी के आशीर्वाद का लाभ लेने आते रहते हैं। आज एक जिले के कलेक्टर आए हुए हैं। सभी साधकों के बीच में बैठे हैं। स्वामीजी ने उनसे कुछ बातें की फिर उन्हें जाने की अनुमति दी। कलेक्टर ने भूमिष्ठ हो प्रणाम किया।

स्वामीजी बोले - देखो भाई, ऐसा नहीं करो। आप कलेक्टर साहब हैं। यह हमें अच्छा नहीं लगता।

कलेक्टर बोले - बापू ऽऽऽ! आपको नहीं, परन्तु हमें तो अच्छा लगता है। हमारे हृदय में जो आपके आशीर्वाद के कारण गदगदता और कृतज्ञता का भाव पैदा होता है उसे प्रकट करने की इतनी छूट तो आपको देनी ही पडेगी।

और ठीक ही है। जिन महापुरुषों को सारे संसार के लुभावने पदार्थ और पद-प्रतिष्ठा भी डिगा नहीं सकती ऐसे मस्त फकीरों को प्रणाम करने मात्र का सौभाग्य भी जिसे मिल गया वह भाग्यशाली है। वह धन्य है।

*　　*　　*

मुझ पर तो बापू की अखूट कृपा बरसती है -

कुछ महीने से एक साधु रामकुशलदास आश्रम में रहता है। अेक दिन लेखक ने उसे पूछा-"भाई, तुम तो रमते जोगी हो। आप आए थे घूमते हुए और यहीं कैसे अटक पडे?"

वह बोला - मेरी राम कहानी क्या बताऊँ आपको! १२ वर्ष से साधु हूँ और भटकता रहा हूँ। १४ फीट की तो मेरी माला ही है। पता नहीं कितनी बार उसे घुमाया होगा, मगर शांति नहीं मिली। और मुझे स्वप्नदोष की ऐसी बीमारी लगी हुई थी कि पिण्ड ही नहीं छोडती थी।

यहाँ अब मैं स्वस्थ हूँ। मुझ पर बापू की अखूट कृपा बरसती है। आत्मिक शांति जैसी जैसी मुझे यहाँ मिली है और मिल रही है वह न हरिद्वार में मिली न कहीं अन्यत्र। अब आप ही बतायें, यह स्थान छोडकर यदि मैं फिर भटकना चालू कर दूँ तो मेरे जैसा भी मूर्ख कहलाने वाला अन्य दुनिया में कोई होगा!

धन्य है महापुरुषों की ऐसी आत्मिक कृपा!

* * *

उस दिन मुझे अनुभव हुआ कि –

और एक दिन साधक वृत्ति वाले यश रायभाई ने कहा – मुझे आश्रम में आना है। मैंने बहुत सुना है स्वामीजी के बारे में। दर्शन तो करने हैं मगर आश्रम का रास्ता नहीं जानता और दूसरी बात ···

लेखक ने कहाँ – हाँ हाँ, आप बोलो तो सही।

यशराय बोले – मुझे आज दो दिन से दस्त की शिकायत है ··· कैसे चलूँगा!

लेखक ने कहा – इसकी चिंता क्या करनी!

और दोनों चल पड़े आश्रम की ओर।

स्वामीजी के चरणों में ही यश रायभाई बैठ गये और फिर क्या क्या हुआ यह उन्होंने बाद में लेखक को बताते हुए कहा –

"भाई वह दिन तो मेरा बड़ा सौभाग्य शाली दिन सिद्ध हुआ। वहाँ स्वामीजी के चरणों में बैठा और मुझे कुछ विचित्र से आध्यामत्मिक अनुभव होने शुरु हो गए। पीठ में रीढ के आसपास कुछ सरकता सा लगा और शरीर में कंम्पन होने लगा फिर बड़ा आनन्द–आनन्द अन्दर अनुभव होने लगा।

उस दिन मुझे अनुभव हुआ कि यह कोई ध्यान की अवस्था थी जो महापुरुषों के प्रसाद स्वरूप ही प्राप्त हो सकती है और जिसके लिये योग–साधकों को गुफाओं और वनों में वर्षों भटकना पड़ता है।

फिर मुझे स्वामीजी ने मुस्कराते हुए प्रसाद दिया। मेरा हृदय तो गदगद् हो रहा था! और आह! क्या उनकी हृदय मोहक मुस्कान और प्रेमभरी आँखें थी? आज भी याद आती है वे नजरें तो हृदय में आनन्द की लहरें उठने लगती हैं।"

ऐसे न जाने कितने जिज्ञासु साधक और संसारी तापों से थके लोगों के लिये यह मोटेरा आश्रम और उसमें रहने वाली दिव्य विभूति आनन्द धाम बनी हुई है।

ॐ··· ॐ··· ॐ···

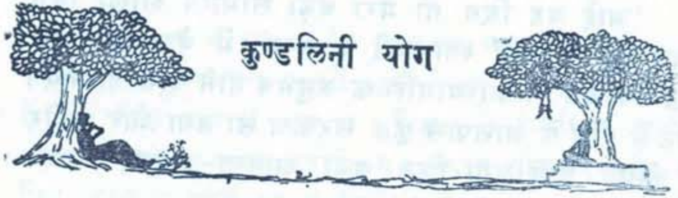

कुण्डलिनी योग

कुण्डलिनी योग के कई नाम हैं। इसको सहजयोग, सिद्धयोग, गुरुकृपा योग, पुरातन योग, सनातन गुप्त योग, आमोद-अद्वत भक्ति योग, हंस योग, अच्युत योग, पंच महाभूत लय योग, राजगुह्य योग, जीव शिवैक्य योग आदि अनेक गुरु परम्परागत नामों से जाना जाता है।

कुण्डलिनी जाग्रति में सहयोगी कारण –

गुरू कृपा, ईष्ट कृपा, शास्त्र कृपा, ब्रह्म विचार, अजपाजप नियमित योगाभ्यास, तालयुक्त गति से वैदिक मंत्रोच्चार, गुरुभाव अथवा भगवद् भाव का अतिरेक (अर्थात गुरुभक्ति या ईष्ट भक्ति का आवेग) भावावेश, प्रेम का अतिरेक या कोई पूर्व के संचित पुण्य कर्मों से यह महामाया शक्ति जाग्रत होती है।

गुरू कृपा –

यह गुरु गम्य विषय है। अर्थात इस मार्ग में 'गुरु कृपा हि केवलम्' सबने स्वीकार किया हुआ है। श्वेताश्वतर उपनिषद में कहा है –

'यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।'
जैसी देव में भक्ति रखते हैं वैसी ही गुरु में रखो।

अपने शास्त्रों ने भी मुक्तकंठ से गुरु महिमा गाई है –

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरूर्देवो महेश्वरः।
गुरुर्साक्षात परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः॥

आनन्द बिन्दु उपनिषद ने गुरु वन्दना करते हुए गाया है –

भोः पूज्या गुरुचरणाः, मदविद्याविभेत्तारः
संतु वो वन्दनानि मम।
युष्मत्प्रसादेन शाश्वतं ब्रह्मसुखं अनुभवामि।
इदानीमहं सर्वस्मादकातरः। मम संदेहाः भ्रमाश्च ध्वस्ताः।

हे परमपूज्य गुरुदेव !

आप मेरी अविद्या को नष्ट करने वाले हैं। मैं आपको बारम्बार वन्दन करता हूँ। आपकी परम कृपा से ही मैं ब्रह्मानंद का अनुभव कर रहा हूँ। अब मैं पूर्णतया निर्भय हूँ। मेरे सब सन्देह और भ्रम नष्ट हो गए हैं।

अर्थात यह योग गुरु प्रति पूर्ण समर्पण (Unconditional Surrender - बिन शर्ती समर्पण) का विषय है। मात्र समर्पण से - शरणागति से कल्पनातीत परिणाम प्रगट होते हैं। इसके ज्वलंत उदाहरण पश्चिमी देशों में विश्व विख्यात वैज्ञानिकों ने अपनी आंखों से देखे हैं।

लगभग पांच वर्ष पूर्व बिलीद्री ब्रेझोनेवो नाम के एक किसान ने दस मिनट तक पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति को प्रभावहीन करके जमीन से चार फुट ऊँचा उडकर बताया। सैकडों वैज्ञानिकों की उपस्थिति में यह प्रयोग हुआ। योग का यह चमत्कार देखकर वैज्ञानिक आश्चर्य चकित रह गए। उस किसान से जब इसका रहस्य पूछा गया तो उसने बताया कि इसमें कारण है मात्र समर्पण भाव। पहले मैं पूर्ण रूप से भाव पूर्वक समर्पित हो जाता हूँ।

किसान ने कहा कि मैं प्रार्थना करता हूँ:

"हे प्रभु। मैं अपने को तुम्हारे हाथ में सौंप रहा हूँ। मैं अपने बल पर जमीन से ऊपर नहीं उड़ सकता, परन्तु तेरी ही ताकत से उड़ता हूँ…।"

शरणागति भाव से गुरुत्वाकर्षण जैसे अकाट्य वैज्ञानिक नियम पर भी विजय पाई जा सकती है तो अन्य व्यावहारिक नियमों की तो बात ही क्या है। अतः 'गुरुकृपा हि केवलम्' यह सूत्र साधक को अनन्य भाव से पकड़े रखना चाहिये।

गुरूकृपा मुक्तिदाता –

पूर्व जन्म में निष्काम भाव से किये गए पुण्य कर्मों के फलस्वरूप अन्तःकरण में मोक्ष हेतु जगी हुई ज्वलंत अभीप्सा के कारण कोई सिद्ध शक्तिपात दाता गुरु मिल जाय और उनकी कृपादृष्टि (स्पर्श, संकल्प, शब्द

दृष्टि द्वारा) से कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत हो जाय तो समझो साधक का जन्म जन्मान्तर का दारिद्रय मिट गया।

हालांकि ऐसे गुरु दुर्लभ हैं, मिल गए तो उनको पहचानना मुश्किल है और यदि पहचान भी लिया जाय तो उनके प्रति अंत तक श्रद्धा टिकी ही रहे यह तो और भी दुष्कर है। अतः जिसको ऐसे गुरू मिले हैं और उनमें उसकी श्रद्धा-भक्ति वास्तव में दृढ हुई है तो उसको अपना जीवन धन्य धन्य हुआ ऐसा समझना चाहिये।

ईश्वर कृपा, अंतःकरण कृपा, शास्त्रकृपा और गुरू कृपा ये चार कृपाएँ जब इकट्ठी होती हैं तब गुरू द्वारा शक्तिपात् दीक्षा कृपा प्राप्त होती है। कारण कि शक्तिपात् से कुण्डलिनी मोक्ष पद प्राप्त करा ही देती है–सर्वोत्तम अधिकारी हो तो तुरंत ही, इसी जन्म में अन्यथा अगले जन्मों में, लेकिन एक बार जाग्रत हो चुकी शक्ति साधक को मोक्ष दिलाए बिना चैन नहीं लेती।

ऐसी गुरु परम्परा अनुश्रुति है कि जाग्रत हो चुकी कुण्डलिनी शक्ति इसी जन्म में या आने वाले अधिक से अधिक तीन जन्मों में मोक्ष दिला देती है। इसलिये

कुण्डलिनी योग में समर्थ गुरु द्वारा शक्तिपात दीक्षा अत्यंत महत्व की मानी गई है।

दीक्षैव मोक्षयत्यूर्ध्वं शौवं धाम नयत्यत्ति।

दीक्षा मुक्ति दिलाती है और शैव धाम में - शाश्वत कल्याण में स्थिर कर देती है। इसलिये गुरुकृपा मुक्तिदाता कहलाती है।

विविध कोषों में कुण्ड़लिनी शक्ति के कार्य -

वैसे तो स्थूल, सूक्ष्म और कारण तीनों शरीर प्रदेशों में कुण्डलिनी शक्ति स्थूल - सूक्ष्म असर पहुँचाती है, परन्तु मुख्य असर अमुक कोषों में ही होता है ऐसा देखने में आता है।

अन्नमय कोष में -

यह शक्ति जब अन्नमय कोष में काम कर रही होती है तब योगशास्त्र में बताए हुए विविध आसन अपने आप होने लगते हैं और साधक की शारीरिक शुद्धि हो जाती है। कैसा भी स्थूल शरीर हो परन्तु गुरुकृपा से उद्बोधित कुण्डलिनी शक्ति जब क्रिया शील होती है और मुख्य रूप से अन्नमय कोष में कार्य करती है तो विविध प्रकार के कल्पना में भी न आवे, जो कि सामान्य रूप से न हो सके ऐसे अनेक आश्चर्यकारक आसन सहज रूप से हो जाते हैं। शरीर में जहाँ तहाँ इकट्ठा हुआ मल-दोष-कचरा यह शक्ति अपने बल से भस्म कर देती है।··· इतना ही नहीं,

इन क्रियाओं द्वारा शरीर में लगे हुए अनेक पुराने असाध्य रोग भी निर्मूल हो जाते हैं - यह इस मार्ग की अलौकिक विशेषता है।

प्राणमय कोष में -

यह शक्ति जब प्राणमय कोष में काम करती है तब विविध प्रकार के चित्र विचित्र प्राणायाम होने लगते है। जिसको प्राणायाम का प्राथमिक ज्ञान भी नहीं है उनके द्वारा भी प्राणायाम होते हुए देखे जाते हैं।

मनोमय कोष में -

यह शक्ति जब मनोमय कोष में काम करती है तब मन नीरव शांति में डूब जाता है। शांति के अगाध महासागर में डूब गया होऊँ ऐसा साधक को अनुभव होता है।

विज्ञानमय कोष में -

यह शक्ति जब विज्ञानमय कोष में काम करती है तब साधक में आध्यात्मिक विद्या के दैवी स्फुरण होते हैं। कई गूढ रहस्यों से पर्दा उठता है। दैवी देवताओं से मंत्र मिलते हैं। इसी को Intiutional Knowledge प्रज्ञा ज्ञान या ऋतंभरा ज्ञान कहा जाता है। यह अति मानस अवस्था है जहाँ से कि मानव जाति के लिये परम कल्याणकारी संदेश प्राप्त होते हैं। योग विद्या के गूढ रहस्य और अपनी आध्यात्मिक विद्या के मौलिक सिद्धांत,

वेद-वेदान्त आदि श्रुति ग्रंथ, रामायण - महाभारत अथवा पुराण ग्रंथ, ज्योतिषविद्या या खगोल विद्या के मूल समीकरण आदि ये सब प्रज्ञा-पारमिता के परिणाम हैं। आइंस्टीन जैसे निरपेक्ष विश्वविख्यात आधुनिक वैज्ञानिक सहर्ष स्वीकार करते हैं कि स्वयं को प्राप्त शाश्वत ऐसे मौलिक समीकरण (Basic Equations) अतिमानस अवस्था की ही परिणति है।

आनन्दमय कोष में –

इस कोष में जब शक्ति कार्यरत होती है तब शरीर का अणु परमाणु अहैतुकी आनन्द से पुलकित हो उठता है।

कोषों की तरह ही चक्रभेदन के समय भी साधक को दिव्य स्पर्श, दिव्य दर्शन, दिव्य नाद, दिव्य सुगंध, दिव्य रस अथवा इनमें से कोई एक की अनुभूति होती है।

यह वस्तुतः गुरूकृपा एवं साधक के स्वानुभव का विषय होने से इसका शब्दों में वर्णन सदैव अपूर्ण ही रह जाता है।

कुण्डलिनी उत्थान के लक्षण –

चक्की की तरह कमर के ऊपर का भाग गोल गोल घूमना, विद्युत के धक्के लगने जैसा अनुभव करना, रीढ की हड्डी में कम्पन, शरीर में झनझनाहट, अकारण अश्रुपात, हास्य, स्वेदन (पसीना आना), चित्र विचित्र

आवाज, जोर से प्रणव एवं अन्य मंत्रों का उच्चार, अपने इष्ट देवी-देवता के स्तोत्रों का मुंह से पाठ होना, नाडी शोधन के समय दस्त लगना, गर्मी बढने से बुखार आना, शरीर का ठंडा पड़ जाना, कफ निकलना, उबासियाँ आना, आँखें लाल होना, भूख प्यास मिट जाना या जोरों से लगना, आँख की पुतली का गोलाकार घूमना, शरीर के विविध भागों में एकाएक खिंचाव अनुभव होना, रीढ़ की हड्डी में कीडियाँ काटती हों ऐसा अनुभव होना, देव-देवियों अथवा गुरुदेव के दर्शन होना आदि अनेक प्रकार के चित्र-विचित्र अनुभव होना कुण्डलिनी जाग्रति के चिह्न हैं।

विभिन्न अनुभव –

इस योगमार्ग में साधक को स्वसंस्कार अनुसार कई प्रकार के अनुभव होते हैं। प्रकाश पुञ्ज, तेजोवलय, आकाश मण्डल, टिम-टिम करते तारा समूह, देव मंदिर, देव-देवियाँ, गुफाएं, झरने, पहाड़–पर्वत, रंग बिरंगे शिवलिंग, फणदार सर्प, विविध लोक, सिद्ध-महात्मा एवं संत, साधक का सूक्ष्म शरीर, गुरु पादुकाएं, फूलों के हार, पुष्प राशी, श्रीफल-घंटा-चन्दन आदि पूजन अर्चन सामग्री, भव्य दीपावली, यज्ञ कुण्ड, छोटे बच्चे, गौधन, हाथी, अश्व आदि प्राणी, ज्वारा तथा विविध झाडियाँ एवं वृक्ष–समूह, जंगल, श्वेत-कृष्ण–रक्त अथवा नील तेज बिन्दु का दर्शन आदि अलौकिक अनुभव होते हैं।

गुरुकृपा से शीघ्र अथवा देर से इनमें से कोई न कोई अनुभव साधक को होते रहते हैं। सद्‌गुरु कृपा से - ईश्वर की असीम कृपा से इस शरीर को भी इनमें से कई अनुभव

हुए हैं। सद्-गुरुदेव तथा विविध संत महात्मा, श्रीकृष्ण, विष्णु भगवान, हनुमानजी, गणपति दादा, शंभु-भोलानाथ, गायत्री माता, अंबाजी माता अदि देव देवियों के दर्शन के समय अभिव्यक्त होता हुआ अनुपम सौन्दर्य शब्दों में व्यक्त करना असंभव है। मानसपूजा के समय प्रकट होते हुए सद गुरूदेव, श्रीकृष्ण, मां भगवतीदेवी आदि के श्री चरणों का सौंदर्य ऐसा अलौकिक एवं आह्लादकारक होता है कि जिसका एक बार आस्वादन करने वाले साधक के सम्मुख संसार के स्थूल गदार्थों का सौन्दर्य एकदम फीका एवं निस्तेज जान पड़ता है। वस्तुतः सदगुरुकृपा से अनुभूत यह कल्पनातीत अतिसौन्दर्य-इसको क्या कहा जाय… ! 'सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम्' कहना पड़ता है और 'गुरुकृपा हि केवलं' मानना पड़ता है।

अखण्ड गुरू भक्ति –

'श्रद्धावान लभते ज्ञानं', 'संशयात्मा विनश्यति।'

इसलिये गुरूभक्ति अखण्ड और अनन्य रहनी चाहिये। स्वप्न में भी गुरू के प्रति संदेह नहीं उठना चाहिये। और इसके लिये साधक साधिकाओं को गुरू प्रबोधक ग्रंथ ही पढने चाहिये और गुरू प्रति श्रद्धा को डिगाने वाले विजातीय व्यक्तियों अथवा परमाणुओं की छाया से भी दूर रहना चाहिये।

ॐ… ॐ… ॐ…

प्रिन्सीपाल डा० जे. पी. अमीन
एम.ए. (कल्ट) एम.ए. (इकों.) एल.एल.बी. पी.एच.डी.
आचार्य एवं हेड आफ डिपा. भारतीय संस्कृति
आर्ट्स एंड कोमर्स कालेज, खंभात (गुजरात)

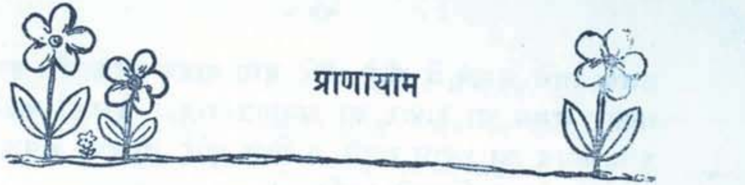

प्राणायाम

प्राणायाम बिना योग्य मार्ग दर्शन के नहीं करना चाहिये। फिर भी एक प्राणायाम आपको बताते हैं उसको करने में कोई गलती होने की व हानि होने की संभावना नहीं है।

अनुलोम-विलोम प्राणायाम :

हाथ के अंगूठे से अपनी नासिका का दाहिना नथुना बन्द करके बाये नथूने से फेफडों में जोर से खीचते हुए हवा भरो। थोड़ी देर हवा अन्दर रोको, फिर बायां नथूना अंगुलियों से बंद करके दाहिने नथूने से बाहर निकालो। अब इसी दाहिने नथूने से हवा खींच कर थोड़ीदेर अन्दर रोको, फिर दाहिना नथूना बन्द रखते हुए हवा बाये नथूने से बाहर निकालो। यह एकबार प्राणायाम हो गया। इसको अनुलोम-विलोम प्राणायाम कहते हैं। नासिका से हवा खींच कर फैफड़ों में भरने को पूरक, फैफडों में हवा रोक रखने को कुंभक और हवा बाहर निकालने को रेचक कहते हैं।

समय-सीमा :

जितनी देर हवा भरने में लगे उससे चौगुना समय हवा अन्दर रोके रखों, फिर जितनी देर हवा अन्दर रोकी है,

उसके आधे समय में धीरे धीरे हवा बाहर निकालें। इस प्रकार समय का १:४:२ का अनुपात रखें। इसको करते वक्त समय का ध्यान रखने के लिये कोई भी इष्ट मंत्र का जप या संख्या गिननी चाहिये।

प्रारंभ करते समय यह जरा कठिन पड़ सकता है, परंतु धीरे धीरे अभ्यास होने से सरल हो जायगा। हमेशा प्रातःकाल अथवा सायंकाल २०-२५ की संख्या में ये प्राणायाम करने ही चाहिये।

मनुष्य के फैफड़ों में करीब ३००० छिद्र होते हैं। ये सब काम में नहीं आते। किसी के पास खूब धन हो और वह काम में नहीं आए तो बेकार भार स्वरूप ही है, ऐसे ही फैफड़ों के सभी छिद्र सामान्य श्वास क्रिया के समय काम में नहीं आते। उनमें से काफी वैसे ही बेकार पड़े रहते हैं। इस प्राणायाम से जब अधिक हवा आंधी की तरह जोरों से फेफडों में भरी जाती है तो वह इन बन्द पडे छिद्रों को भी सक्रिय कर देती है और उनका भी उपयोग होने लगता है। इससे फेफडों की शक्ति में काफी वृद्धि हो जाती है।

इस प्राणायाम से लाभ :

इसके बहुत लाभ हैं। इससे फेफडों की शक्ति में काफी वृद्धि हो जाने से अधिक रक्त शुद्ध होता है और वह शरीर के सूक्ष्मातिसूक्ष्म भागों में जमे हुए बहुत पुराने मल-विकार को बाहर निकाल फैंकता है। पुराने कई असाध्य रोग जो दवाइयों से भी ठीक नहीं हो रहे थे, वे इस प्रयोग से दूर हो जाते हैं, ऐसा देखा गया है। शरीर में तेज और बल

की वृद्धि होती है। बदन सुन्दर, स्फूर्तिवान और हल्का महसूस होता है। चिंताएं दूर होती हैं। मन की चंचलता कम होकर एकाग्रता सधती है। मन इतना प्रसन्न और हलका हो जाता है मानो स्वर्ग में बैठे हो।

इसके साथ एक और प्रयोग करें। श्वास लेते समय भावना करें कि वायुमंडल से शुद्ध हवा के साथ परमात्मा का दिव्य ओज मैं अपने अन्दर भर रहा हूँ। इससे मेरे अन्दर अदम्य उत्साह और शक्ति जाग्रत हो रही है। ऐसे ही हवा बाहर फेंकते समय भावना करें कि मेरे शरीर के मल-विकार-दुर्बलताएं-कमजोरियाँ, हीनभाव सब बाहर जा रहे हैं। मेरा शरीर एकदम स्वस्थ हो रहा है। मैं आनन्द मग्न हो रहा हूँ। मुझे कोई दुख नहीं है। मैं मुक्त हूँ – ॐ. ॐ. ॐ ...

इस प्रयोग का अनुपम लाभ आपको कुछ ही दिनों में प्रत्यक्ष दिखाई देगा। आप आश्चर्य करेंगे कि आपका शरीर कितने वेग से स्वस्थ एवं पुष्ट होता जा रहा है। आपके आत्मिक बल और स्मरण शक्ति में अभूतपूर्व बढोतरी होगी। पेट की कब्जी-बदहजमी, कमजोरी, खट्टी डकारें दूर होगी। पेट की हाजमा शक्ति बढेगी। दिन भर मन प्रसन्न और तन स्वस्थ रहेगा। मन की चिंताए दूर होगी और अपनी कार्यशक्ति बढेगी।

यह सब फायदे आप स्वयं अनुभव करेंगे। मगर प्राणायाम प्रातः सूर्योदय के समय या सायंकाल सूर्यास्त के समय के आसपास एवं शुद्ध हवा में करें तो पूरा पूरा और शीघ्रता से फायदा होगा।

— संत श्री आशारामजी महाराज

ये दिव्य महापुरूष और उनकी अलौकिक करुणा –

इस जगत में जितना संतों को सहन करना पड़ा है, उतना शायद और किसी को नहीं। सत्य को कसौटी पर कसने का अज्ञानी लोगों ने जैसे कोई ठेका ले रखा है। स्वयं सत्य से अनभिज्ञ, फिर भी सत्याचरण करने वाले, सत्य का प्रकाश फैलाने वाले, सत्य की राहपर दूसरों को चलाने वाले और युग युग से समाज को मार्ग निर्देश करके समाज को पतन से बचाने वाले सत्पुरुषों और संतजनों को अपनी तुच्छ बुद्धि की मान्यताओं पर कसकर अज्ञानी लोगों ने हर युग में आलोचनाएं और टीकाएं की है। उनको अनेक प्रकार के कष्ट दिये हैं। अपने अज्ञान के कारण ही उन्होंने ईसा और मंसूर को सूली पर चढाया, सुकरात को और ऋषि दयानंद को जहर पिलाया और जब वे अपनी स्थूल देह छोड गए तो बाद में समझ आने पर–उनकी महत्ता जानकर उन्हींकी पूजा करने लगे।

जब जब भी इस जगत में मनुष्य के लिये कुछ अहितकर प्रवृत्तियाँ बढती हैं तब कोई न कोई महापुरुष करुणावश अपने एकांत को छोडकर लोक प्रकाश में आता है और जब उसका सुधार कार्य विशेष ख्याति प्राप्त करने लगता है तो अबोधवश लोगों की टीकाएं, निंदाएं, खोटी चर्चाएं भी शुरु हो जाती हैं। हर प्रकार से उन महापुरूष

को एवं उनके कार्य को हानि पहुँचाने का प्रयत्न किया जाता है।

महापुरूषों का भी सत्य का धरातल इतना मजबूत होता है कि ये विरोधी आँधियाँ उनका कुछ भी बिगाड़ नहीं पाती। फिर भी उनके प्रशंसकों, भक्तों, शिष्यों आदि को इससे बडा दुख होता है और उनको लगता है कि अरे, ये निंदक लोग अपना भला नहीं समझते और अपने पैरों आप कुल्हाडी मार रहे हैं। संत कबीर दासजी कहते हैं –

कबीरा निंदक ना मिलो, पापी मिलो हजार।
एक निंदक के माथ पर, लाख पापिन को भार॥

फिर भी महापुरूषों के मन में कभी लोगों के बारे में दुर्भाव पैदा नहीं होता। यदि कोई भाव आता ही होगा तो इतना ही कि "अरे, हम तुम्हें प्रेम का अमृत बांटने आए और तुम अपनी नादानी वश विरोध में जहर ही उगलने लगे!" इस बालकपन पर उनको हंसी भी आती होगी, फिर बीमार बच्चे को मां जैसे दवा पिलाती है– उसमें से जितनी पीलें उतना अच्छा, बाकी ढुल जाती है; वैसे ही ये दिव्य महापुरुष संसार के विरोधों की परवाह नहीं करते और अपने दिव्य अमृत को जब तक देह है अपनी करूणा वश बांटते ही रहते हैं।

० कटु अनुभव –

तथागत भगवान बुद्ध के पास उनके एक शिष्य ने आकर

कहा – 'प्रभु ! अब मुझे यात्रा में नहीं भेजें। अब इधर ही भिक्षु संघ की सेवा में रहूँगा।"

"क्यों, यात्रा में कोई कटु अनुभव हुआ है क्या ?" तथागत ने पूछा।

"भगवन ! लोग तथागत एवं धर्म संघ की खूब निंदा करते हैं। मुझसे यह निंदा नहीं सुनी जाती।"

शिष्य ने नीची नजर करते हुए कहा।

"तो इसलिये क्या यात्रा में नहीं जाना··· ?"

तथागत ने सहज हास्य के साथ कहा

"भगवन ! निन्दा सुनने की बजाय यहीं बैठे रहना क्या ठीक नहीं रहेगा ?" शिष्य ने समाधान करना चाहा।

"निन्दा एक ऐसा जाल है जिससे जगत का कोई भी महापुरुष अछूता नहीं रह सका है। इसमें तथागत कैसे अपवाद रह सकते हैं ?"

महात्मा बुद्ध ने हंसकर जवाब दिया।

समस्त विश्व के लिये जिनके हृदय में प्रेम और करुणा का झरना बहता रहता है ऐसे महान भगवान बुद्ध की निन्दा करने में भी लोगों ने कुछ बाकी नहीं रखा।

० दुष्टता की दुनियाँ –

ईसाई धर्म में घुसे हुए पाखंडों का भण्डाफोड़ करने एवं सुधार करने के लिये यूरोप में 'मार्टिन लूथर' खड़े हुए। लूथर के ऊपर स्वयं पोप एवं उसके अनुयायियों ने बड़े जुल्म करने शुरु कर दिये।

एक दिन लूथर के एक शिष्य ने उनसे कहा, "मास्टर, अब तो हद हो गई। आप कोई ऐसा शाप दो कि निंदक जल कर भस्म हो जाय।"

"यह कैसे हो सकता है ?"

"आपकी प्रार्थना तो भगवान सुनते हैं। उनको प्रार्थना करके कह दो कि इन सब दुष्टों पर बिजली गिरे और वे सब उसमें जलकर भस्म हो जाय।"

"भले मानस, मैं भी ऐसा विचार उनके लिये करूँ तो उनमें और मुझमें फर्क ही क्या रहा ?"

"परन्तु इन लोगों का अन्याय, अविवेक और नालायकी···"

"यह सब देखने का काम हमारा नहीं है। अपने तो अपने ढंग से काम करते जाना है। असत्य और धर्म की विकृतियों के विरोध में डटे रहना है। बाकी का काम भगवान अपने आप संभालेंगे।"

"गुरू देव ! आप अपनी शक्ति का प्रयोग करके इन लोगों का हृदय बदल दो।"

"राग और द्वेष, रोग और दोष अन्दर से कोई कम न होने दें तो गुरुदेव उसमें क्या कर सकते हैं ? अपने तो सबके हृदय में सत्य का उजाला करने के लिये जो बन सके वह करते जाना है – फिर दूसरे जो करते हों उन्हें करने दो। अपने अपना शुभ रास्ता, सत्य का पथ नहीं छोडना है।"

तुम डाल डाल तो हम पात पात –

सुप्रसिद्ध सिंधी संत श्री टेऊराम ने सिंधी समाज में

घुसी हुई कुप्रवृत्तियों को दूर करने का कार्य शुरु किया तो कई अज्ञानी लोगों ने उनको परेशान करना शुरु कर दिया। कई सज्जन लोग उनके पास आत्मकल्याण के लिये आने लगे, उनको भी हतोत्साहित करने का पूरा प्रयत्न विरोधी लोगों ने किया। यही नहीं, लोगों ने उनके आश्रम में मरे हुए कुत्ते और अन्य कचरा भी हरिजनों द्वारा फिकवाया। संत स्वयं खड्डा खोदते और कुत्ते व कचरा आदि उसमें दबा दिया करते। यह सब सहन करते हुए भी लोकहित की प्रवृत्ति उनकी चालू ही रही।

इतने से ही लोग चुप नहीं रहे। संतको उन्होंने परेशान करने हेतु न जाने कैसे कैसे रास्ते अपनाए। उनके आश्रम में चरस रखवाया, झूठे केस करवाए. पिंजड़ों में खडा किया, आश्रम के कुए में अपने पैसे खर्च करके केरोसिन डलवाया। ओह! संत को परेशान करने की भी कोई हद है!

दिव्य दृष्टि–

जब राम को वनवास जाना था तो सीता भी उनके साथ जाने के लिये तैयार हो गई। लोगों ने कहा कि सीता सब गहने और राजसी कपड़े उतारकर जाए। मगर महर्षि वसिष्ठ ने दृढता से कहा कि 'सीता गहने पहनकर ही जायगी। वनवास राम को मिला है, सीता को नहीं।' लोगों ने खूब विरोध किया और कहा कि गृहस्थियों की बातों में संतों को टाँग अडाने की क्या जरुरत है? इनको तो जंगल में अपना ध्यान भजन करना चाहिये। मगर सब विरोधों का सामना करते हुए भी वसिष्ठजी अपनी बात पर दृढ रहे।

बाद में जब रावण द्वारा सीता हरण हुआ, तब वे ही गहने सीता

ने रास्ते में डाले, जिनके सहारे सीता की खोज आसान बनी। ऐसी दूर दृष्टि - ऐसी दिव्य दृष्टि संतों की होती है। अज्ञानी लोग उनको नहीं समझ पाते और संतों के प्रति अपने मनमाने अभिप्राय बनाते रहते हैं कि संतों को ऐसा नहीं करना चाहिये या ऐसा करना चाहिये आदि। हम लोग एक ही परमात्म तत्व में अनेकता देखने के आदि हैं, जबकि संत जन इस बहुलता का भास कराने वाले विश्व-ब्रह्माण्ड में भी एकत्व का प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं। उनका मन उस एक ही परमात्म तत्व के साथ जुड़ा हुआ होता है।

ऐसे संत न तो किसी के विरोध या धमकी से प्रभावित होते हैं और न ही संसार का कोई भी एश्वर्य उनको आकर्षित कर सकता है। इसलिये अज्ञानी जन व्यर्थ ही उनकी निन्दा के भागी बनकर पाप कमाते हैं। एक बार कहते हैं, शिवाजी ने अपने कुछ लोगों को पालकी, हाथी–घोडे–छत्र–चमर आदि के साथ सन्त तुकाराम को लेने भेजा। परन्तु सन्त तुकाराम ने जवाब भेजा –

मैंने ठुकराए दंभभाव, यश के सुख सुविधा के अवसर।
तुम उन्हें भुलावे में डालो, जिनको वे लगते मधुर मधुर॥

धन्य हैं ये महान् सन्त जिन्हें कोई भी दुनियाँ की नश्वर भोग सामग्री आकर्षित नहीं कर सकती और धन्य हैं उनकी करुणा कि जिसके वश होकर वे अज्ञानी-अबोध लोगों के हजारों निंदात्मक विरोधों को सहन करके भी उनके कल्याण के लिये अपना जीवनोत्सर्ग करते आए हैं और करते रहते हैं!

साधना–पथ पर बढते चलें

बुधवार
३०–११–७७

स्वमीजी–

सबको प्यार की प्यास ……!

सभी लोग प्रेम के भूखे होते हैं। जहां प्रेम मिलता है, वहीं जाते हैं। मगर सच्चा प्रेम तो सन्त ही देते हैं। क्योंकि उनमें आत्मदृष्टि होती है। वे सबमें अपना आप ही देखते हैं। मनुष्य तो क्या, पशु–पक्षी–वनस्पति–सबमें।

लोग कहते हैं, स्वामीजो जादू करते हैं। अरे! जादू क्या–वे मनुष्य को सच्चा प्यार, सच्चा आनंद देते हैं। जिसको सच्चा प्रेम बांटना आ गया, समझो उसे वशीकरण मंत्र आ गया। उसे सब कुछ आ गया।

सारे संसार के आकर्षणों को छोडकर भी लोग इधर आते हैं, तो कुछ लोग उनसे पूछते हैं–फकीरों के पास जाने से क्या लाभ?

उनको मालूम ही नहीं कि जो फकीरोंके पास होता है, वह कहीं नहीं मिलता। संसार में वैसे भी क्या मिलता है? सिकंदर जैसे भी

मरे तो उनके दोनों हाथ खाली थे। सचमुच में सच्चा और निर्भय जीवन तो फकीर ही जीते हैं।

सच्चे फकीरों की बात करता हूँ। भिखमंगों की नहीं। सच्चे फकीर तो बादशाह होते हैं। उनको कोई वासना नहीं होती। उनको अपने ब्रह्मत्व में कोई संशय नहीं होता।

'संशय की जो फाकी करे उसका नाम फकीर।'

ऐसे फकीरों को किसीकी भी पडी नहीं होती, इसलिये वे सच बोलते हैं। क्योंकि उनका अपना कोई स्वार्थ नहीं होता। उनकी इस सच्चाई के कारण ही कई ऐसे लोग जिनके स्वार्थ को धक्का लगता है, वे निन्दा भी करते हैं। मगर निन्दकों को यह खबर ही नहीं होती कि उनकी निंदा से फकीर प्रभावित ही नहीं होते।

फकीर आत्मभाव से सबको देखते हैं। उनको निंदकों में भी अपना आपा ही नजर आता है।

वस्तुतः संसारी लोग फकीरों को समझ ही नहीं पाते।

एक बार एक फकीर को एक गर्म शॉल (कम्बल) की जरुरत हुई। दुकानदार ने जो कम्बल भेजा उसकी कीमत उसने ६०) रु. बताई। वस्तुतः उसकी कीमत ३५) रु. ही है, हमको उसने ठगा है, ऐसा उनके भक्तों ने कहा। तो फकीरने कहा–

"भाई ठीक है, थोडे से पैसों के लिये उसे क्या कहना। उसमें भी मेरा अपना आपा (आत्मा) है। क्या हुआ उसको कुछ पैसे अधिक मिल गए तो! पैसों के लिये क्या मैं अपनी आत्मीय दृष्टि खो दूँ?"

उस फकीर के ऐसे पवित्र भाव के कारण उधर क्या हुआ कि पहले तो दुकानदार के मन में आया कि यह मैंने ठीक नहीं किया,

उनको ऊपर के २५) रु. वापस भेज दूँ। फिर सोचा, वह वस्तु तो सन्तों के काम आएगी न, उसके क्या पैसे लेना! सन्तों का जीवन तो समाज का निरन्तर मार्गदर्शन करता रहता है। और यह सोचकर उसने सारे ही पैसे लौटा दिये।

तो यह आत्मदृष्टि का चमत्कार है।

तात्पर्य यह है कि सन्त अर्थात फकीर किसी का बुरा नहीं चाहते। उनसे सबका भला होता है। सुखमनी में कहा भी है–

'ब्रह्मज्ञानी ते कछु बुरा न भया।'

निंदक भी जाने अनजाने सन्त को या फकीर को याद तो करते हैं! सन्त के हृदय में ईश्वर का वास होता है। उनके स्मरण से कभी न कभी–निंदक हो या भक्त सभी का भला ही होता है।

अच्छा, छोड़ो इन बातों को। यह तो सब सन्तों के जीवन में होता ही आया है। यह कोई नई बात नहीं है।

हम समझ पूर्वक कार्य करें। जीवन का अमूल्य समय संसार की मिथ्या तड़क-भड़क में न खोऐं। समयका सदुपयोग करना सीखें। काम के समय काम और ध्यान के समय ध्यान करे। अपने जीवन को उर्ध्वगामी बनाने के लिये सत्शास्त्र पढें, सत्संग में जाएं।

सत्संगसे वंचित रहना महान् पापों का फल है। किसी की सत्संग में रुचि होती है तो समझो उसके पुण्य प्रबल है। यदि सत्संग में रुचि नहीं होती, तो समझो अभी उसके पापकर्म विनष्ट नहीं हुए हैं। वह कितना ही कमा लें यश-प्रतिष्ठा-धन-वैभव और कितना ही बड़ा बन जाय, उसे शांति नहीं मिलेगी। वह अशांत बना रहेगा। इसलिये लोगों के कहने की परवाह न करो और सच्चे मार्ग को जब तक कि लक्ष्य सिद्धि न हो जाय, कभी न छोडें। अपनी साधना को आगे बढाते रहें। इसी में जीवन की सार्थकता है।

* * *

मेरे अध्ययनकाल में काफी समय से मुझे मेरी साधना मे योग्य मार्गदर्शन देवे ऐसे महापुरुष की आवश्यकता मैं अनुभव कर रहा था। एक बार किसी के कहने से मैं मोटेरा आश्रम मे स्वामीजी के दर्शन के लिये आया। स्वामीजी के दर्शन मात्र से मेरे हृदय के तार झंकृत हो उठे और मैंने उनके प्रति अेक अलौकिक आकर्षण का अनुभव किया। कुछ ही समय बाद आश्रम में आयोजित ध्यानयोग शिविर मे जब भाग लिया तो पूज्य श्री के सांनिध्य से हृदय की और ग्रंथियां खुली। अेक वार आश्रम मे घूमते हुए मन ही मन विचार कर रहा था कि मैं किस प्रकार अपने से संबंधित लोगों से हिसाब-किताब पताकर (पूरे करके) आश्रम में ही आकर पूज्यश्री के सांनिध्य में रहते हुअे जमकर साधना करुं कि इतने में तो स्वामीजी ने कुटिया का दरवाजा खोला और मुझे बुलाकर मुस्कराते हुअे पूछा –

"क्यों! हिसाब-किताब पूरे हुअे कि नहीं?"

सुनकर मैं तो चकित रह गया! अन्दर ही प्रश्नों का समाधान भी मिल गया था। मैंने पूज्य श्री के चरणों में प्रणाम किया – और तब से परमपूज्य संत श्री आशारामजी महाराज की दिव्य प्रेरणा से मेरे जीवन का पल पल पोषित हो रहा है।

श्री करसनभाई पटेल, गुजरात युनिवर्सिटी
एम. ए. (तत्वज्ञान), रिसर्च स्टुडन्ट

परमपूज्य गुरुजी की उपस्थिति में क्या बोलूं, समझ में नहीं आता। कोर्टों में तो बहुत बोला हूँ, परन्तु यहाँ बोलने की सामर्थ्य नहीं जुटा पा रहा हूँ। (अवरुद्ध कंठ से) समर्थ गुरु न मिले तो मनुष्यों को कितने कितने जन्म लेने पडते हैं–इस भवसागर से तरने के लिये!

मैं बहुत फिरा हूँ सद्गुरु की खोज में। श्री बजरंग दासजी महाराज, रणछोडदासजी महाराज, शेरडी के सांई बाबा, नित्यानंद स्वामी आदि के दर्शन किये हैं। यह कोई अतिशयोक्तिपूर्ण भाषण नहीं कर रहा हूँ। यह मेरे हार्दिक भावों का प्रगटीकरण है। परंतु अब मेरी खोज पूरी हो गई है। परमपूज्य स्वामी आशारामजी महाराज की मुझ पर अनन्य कृपा बरस रही है... । कुछ भी कहें, आप सब लोग–मेरे लिये तो स्वामीजी साक्षात् भगवान हैं।

श्री हसमुखलाल सी. शाह एम. ए. एलएल. बी.
भूतपूर्व जज, बडौदा

मैं पहले नास्तिक विचारों का था। जब विचारों में परिवर्तन आया, तो गुरु की खोज में भारत के कई प्रसिद्ध आश्रमों में घूमा। ऐसे ही यहाँ बाबा जयगुरुदेव के मेले में बाबाजी के दर्शनार्थ आया था। यहाँ से भी निराश होकर जा रहा था कि मेरे बडे भाई इधर ले आए। संत श्री आशाराम जी को देखकर पहली ही नजर में अनुभव हो गया कि सही जगह पर आ गये हैं। मन ही मन बोला कि वाह प्रभु ! बहुत भटकाया और महापुरुष तो बहुत नजदीक थे ! पूज्यश्री की मुझपर अनन्य कृपा है।

श्री रमणभाई एडवोकेट (युवा नेता)
हिम्मतनगर (गुजरात)

संत महंत बहुत हैं, परन्तु शिष्य को ठीक ढंग से साधना में आगे बढ़ाना यह हर एक की विशेषता नही होती। शिष्य पढा लिखा है या बेपढा, समाज में प्रतिष्ठावान है, बडा है कि छोटा है–सबको अपने अपने ढंग से कसकर साधना में आगे बढाना यह 'पूज्यश्री' की अनुपम विशेषता मैंने प्रत्यक्ष अनुभव की है। लगातार तीन दिन आश्रम में पूज्यश्री के निकट सांनिध्य में रह कर अपने अन्दर मैंने जिन अलौकिक चामत्कारिक अनुभवों का लाभ लिया है, वे अवर्णनीय हैं। उनसे पूज्य श्री के पास अगाध आध्यात्मिक खजाना है इस बात का संकेत मिलता है। मेरे विचार से शायद ही कोई ऐसा अभागा व्यक्ति होगा, जो यहाँ एक बार सच्ची लगन से आया हो और बिना कोई आध्यात्मिक लाभ लिये लौटा हो। सदैव आत्मानन्द में मग्न ऐसे समर्थ तत्वनिष्ट योगीराज महापुरुष का सांनिध्य–लाभ मुझे मिलता है इसबात का मुझे गर्व है।

प्रोफेसर रोहित शुक्ल, अर्थशास्त्री
सरदार पटेल इन्स्टीट्यूट ऑफ इक्नामिक्स एन्ड
सोशीयल रिसर्च, थलतेज (अहमदाबाद)

'पूज्यश्री' की अमृतवाणी के अन्य रत्न

१	सहजवाणी (भाग १–६)		हिन्दी	४–६०
२	दिव्य जीवन की ओर		,,	०–६०
३	आनन्द का स्रोत		,,	०–३०
४	सुख–दुख से परे		,,	१–२५
५	परमसुख की ओर		,,	१–२५
६	नारी–धर्म		,,	०–५०
७	जागो, अपने आप में		,,	१–००
८	योगलीला (पूज्यश्री की जीवन झलक)		गुजराती	१–२५
९	सत्संग–सरिता		,,	०–५०
१०	वास्तविक जीवन नो राह		,,	१–००
११	व्यवहार मां वेदान्त		,,	१–५०
१२	जीवन ना अजवालाँ		,,	१–५०
१३	आतम दीप जगावो		,,	१–५०
१४	अमी झरना		,,	०–३०
१५	मादक पदार्थोंथी सावधान		,,	०–२०
१६	संतवाणी		,,	०–२०
१७	व्यसन ना व्याधि		,,	०–२५
१८	सहजवाणी (भाग–१)		सिंधी	०–२५
१९	संतवाणी		,,	१–००
२०	ब्रह्मबावनी कथा (पद्य)	अन्य	गुजराती	०–८०
२१	संतवाणी (,,)	,,	हिन्दी	१–००
२२	मां बाप ने भूलशो नहीं	,,	,,	०–३०
२३	भजन माला	,,	सिंधी	०–४५
२४	सुखमणी	,,	,,	४–००
२५	भगवद्–गीता	,,	,,	३–००

❊ जागो, अपने आप में ❊

तो क्या हम नींद में हैं ? क्या गहरी बेहोशी में हैं ? हाँ, बेहोशी में ही हैं। तभी तो हर बार सुखी होनेका प्रयास करते हैं और हर बार निराशा हाथ लगती है। वही कार्य बार बार किये चले जाते हैं जिसको करके हर बार पछताए हैं।

यदि होश में होते तो ऐसा नहीं होता।

संत और शास्त्र कहते हैं कि जिसे तुम लोग होश और जागृति समझ रहे हो वह गहरी बेहोशी और सुषुप्ति है। अतः

जागो, अपने स्वरूपमें – अपने आपमें।

पूज्य श्री आशारामजी महाराज भी ऐसे ही संत है। वे कहते हैं–

"एक बार जाग गए तो तुम्हारे से जो भी होगा सहज होगा। उससे आनन्द फूटेगा। उससे सुगंध उठेगी और उससे आसपास का वातावरण भी प्रसन्नता से खिल उठेगा।"

अपने स्वरूप में जागकर तुम किसी की हत्या भी करोगे तो तुम्हें पाप नहीं लगेगा। यही तो गीता के कृष्णार्जुन संवाद का सार है !

परन्तु कैसे जागें ?

तो करें किसी ऐसे संत, महापुरुष की खोज जो स्वयं जाग चुके हैं। जो हमको जगा सकें।

आवरण : दर्शन प्रिन्टर्स, सत्तापस रोड, अहमदाबाद-१.